Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किसान के खून और पसीने की पूरी कीमत चुकाई जाय, यह हमारा संकल्प है

- सिंचाई सुविधा के लिए औसतन 16 घंटे बिजली और नहर के आखिरी छोर तक पानी।
- खेती योग्य एक-एक इंच जमीन को तीन वर्ष के अन्दर सिंचाई सुविधा देने की कारगर रणनीति।
- 1994–95 के दौरान निःशुल्क बोरिंग योजना द्वारा पूर्व निर्धारित लक्ष्य 2 लाख के बजाय 3 लाख बोरिंग की व्यवस्था व गत वर्ष के मुकाबले 90 प्रतिशत अधिक वित्तीय प्राविधान।
- गन्ना मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि से 20 लाख गन्ना किसानों को एक अरब रुपये से भी अधिक का लाभ।
- गन्ना मूल्य का लगभग शतप्रतिशत भुगतान तथा पेराई क्षमता बढ़ाने हेतु 25 नई चीनी मिलों की स्थापना के लिए आशय पत्र जारी।
- 'खलिहान दुर्घटना बीमा योजना' दिसम्बर 93 से प्रारम्भ और 'फसल बीमा योजना' प्रारम्भ करने का विचार।
- ऊसर बहुल 12 जनपदों में 'भूमि सेना' गठित करके 12000 हेक्टेयर भूमि के उपचार के लिए 313 करोड़ रुपये का प्राविधान। इस योजना से 45 हजार टन अतिरिक्त खाद्यान्न का उत्पादन और 45 लाख श्रमिक दिवस रोजगार की सम्भावना।
- किसानों को उपज का उचित मूल्य दिलाने के इरादे से गेहूं तथा मोटे अनाज प्रदेश के बाहर भेजने पर लगा प्रतिबन्ध समाप्त।
- मंडी परिषद और मंडी समितियों की सदस्यता किसानों अथवा व्यापारियों को ही देने की व्यवस्था।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

युगसाक्षी-30

वर्ष 8 : अंक 2
अप्रैल-जून, 1994
एक प्रति 8.50/-रु.
संस्थाओं के लिए 10.50 रु.
वार्षिक : व्यक्तियों के लिए 32/-रु.
संस्थाओं के लिए 40/-रु.
पंचवार्षिक : व्यक्तियों के लिए 150/-रु.
संस्थाओं के लिए 180/-रु.

विशेष सहयोग
डॉ० सुरेश चन्द्र द्विवेदी
सुश्री मधुरिमा सिंह

सम्पर्क :
52, पुराना बादशाह नगर
लखनऊ-226 007

फोन : 386236

इस अंक में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विज्ञप्ति

लेखकों से निवेदन है कि रचनाएं टंकित या स्वच्छ लिखित भेजें। रचना के अन्त में अपना पता अवश्य लिखें। कवितायें कई भेजनी चाहिए ताकि सम्पादक मण्डल प्रकाशनार्थ चयन कर सके। टेढ़े–मेढ़े हस्ताक्षर न करके अपना पूरा नाम लिखने का कष्ट करें।

'युगसाक्षी' किसी भी कवि को दो-तीन से अधिक पृष्ठ नहीं दे पाता, अतः अधिक लम्बी कविताएं स्वीकार नहीं करता।

'युगसाक्षी' किसी भी दल या शिविर से बंधी पत्रिका नहीं है, न साहित्य में, न राजनीति में। हिन्दी का प्रत्येक प्रतिभाशाली, श्रेष्ठ लेखक 'युगसाक्षी' का अपना लेखक है।

आलोचनार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

व्यवस्था से सम्बद्ध शिकायत के लिए कृपया जवाबी कार्ड का उपयोग करें।

पिछले अंक में कुछ असावधानी और कुछ प्रूफ रीडिंग में कमी रह जाने के कारण कई अप्रिय अशुद्धियाँ रह गयी थीं जिनमें डॉ० उत्तम प्रकाश मिश्र का कवर पर गलत नाम छपना विशेष आपत्तिजनक था। असावधानी के कई उदाहरण पृष्ठ छह के पहले पैराग्राफ में दृष्टि के बदले 'दिष्टि' (पंक्ति 4) 'व्यापती' के स्थान पर 'व्याप्ती' (पंक्ति 10) तथा 'सम्मत' की जगह 'समस्त' (पंक्ति 12) असावधानी के निदर्शन हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

देवराज

परत–दर–परत

इधर एक विशेष कारण से कुछ पुरानी तिथियाँ जानने की जरूरत हुई : 'लखनऊ विश्वविद्यालय' में नौकरी कब शुरू की और कब खत्म; हिन्दू विश्वविद्यालय में जुलाई 1960 में, उस समय स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाले कालेज ऑव् इंडॉलॉजी में सयाजीराव गायकवाड प्रोफेसर के रूप में काम शुरू किया था, पर ज्वाइन करने की तिथि–जो शायद 18–20 के बीच थी, सही याद नहीं। आश्चर्य की बात यह कि उस समय की, अर्थात् सन् 1948 तथा सन् 1960 की डायरियां मौजूद हैं, पर उनमें कहीं उक्त तिथियों का उल्लेख नहीं है। मतलब यह कि जीवन की खाने–कमाने से सम्बन्धित उक्त घटनायें उल्लेख योग्य नहीं समझी गयी। इस भूल के प्रायश्चित्त स्वरूप इधर की कुछ तिथियाँ यहाँ अंकित की जा रही हैं। विगत मार्च की अन्तिम तीन तिथियों में पूना विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के तत्वावधान में प्रस्तुत लेखक के उपलक्ष्य में एक बृहत् समारोह प्रो० सुरेन्द्र बारलिंगे के कर्मठ नेतृत्व में आयोजित किया गया—आयोजन भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद, दिल्ली की ओर से था। महाराष्ट्र की अनेक संस्थाओं का सहयोग, जिनमें महाराष्ट्र इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी मुख्य था। बाहर के तथा पूना के विद्वानों की संख्या कम से कम सौ रही होगी जो लगातार विभिन्न सत्रों में उपस्थित रहे; पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का भी सहयोग रहा। दो सत्र मेरे साहित्य के लिये निर्धारित किये गये जिनमें हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० उमाशंकर उपाध्याय तथा वहाँ के रीडर डा० रामजी तिवारी ने मेरे काव्य से सम्बन्धित आलेख पढ़े; बम्बई से समागत प्रो० चन्द्रकान्त बान्दिबड़ेकर तथा दिल्ली से आगत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
सुश्री राजी सेठ ने मेरे उपन्यासों की समीक्षा प्रस्तुत की ।......पढ़े जाने वाले पर्चों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन पर बहस के लिये समय निकालना विभिन्न अध्यक्षों के लिए असम्भवप्राय था । बहस के बिन्दुओं पर मेरे द्वारा अलग-अलग वक्तव्य देना भी सम्भव न था । विदेश, अर्थात् अमेरिका के एक प्रोफेसर मायर भी निरन्तर उपस्थित रहे । उनके तथा अन्य चार छह स्तर अध्यापकों के साथ बातचीत की मुद्रा में 27 मार्च को सुबह-शाम वीडियो फिल्म भी बनायी गयी । वैसी अन्तिम फिल्म 2 अप्रैल को एक रम्य स्थल में नौका विहार करते हुए बनायी गई ।

उक्त चन्द दिनों प्रस्तुत लेखक को विभिन्न संस्थाओं आदि में, और वहाँ, विशेषत: एम० आई० टी० में, आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में कुछ वैसा ही महत्त्व दिया गया जैसा विवाह के अवसर पर वर नाम के प्राणी को दिया जाता है । किन्तु उसके बाद......? कुछ अच्छे आलेख पढ़े गये थे पर उनके, आवश्यक संशोधन–परिवर्धन के बाद, प्रकाशन का कोई प्र न उठता नहीं दिख पड़ा । मेरे विचारों या प्रकाशनों के प्रचार की दृष्टि से, और दर्शन तथा साहित्य की दृष्टि से भी, यह ज्यादा लाभप्रद होता कि सिर्फ 10–15 सुचिंतित निबन्ध प्रस्तुत किये जाते और उन पर समुचित बहस होती ।

हिन्दी विभाग में प्रसिद्ध विद्वान डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित से पहली बार साक्षात्कार हुआ; उनकी अध्यक्षता में कविता पाठ और छोटे–मोटे वक्तव्य, विशेषत: काव्य और काव्य–समीक्षा के सम्बन्ध में प्रस्तुत करने का सुयोग मिला । दीक्षित जी ने, मेरे पाँच कविता–संग्रह पढ़ पाने की जानकारी देते हुए 'इला और अमिताभ' पर लम्बी टिप्पणी की ।

उक्त आत्मकथात्मक विवरण देने का कारण ? इधर दर्शन-सम्बन्धी कुछ प्रश्नों पर विचार करने के सिलसिले मे कई दार्शनिकों की चिन्तन-प्रवृत्तियों व कृतियों पर 'लायब्रेरी आफ लिविंग फिलॉसफर्स' द्वारा प्रकाशित मोटे ग्रन्थ देखे जा रहे हैं । टैगोर लायब्रेरी से सी० डी० ब्रॉड तथा अर्न्स्ट कैसीरर पर ग्रन्थ लाये गये । देखा कि प्रो० ब्रॉड सम्बन्धी ग्रन्थ पहली बार मेरे द्वारा इश्यू कराया गया; कैसीरर सम्बन्धी ग्रन्थ सन् 50 से सन् 94 तक सात–आठ बार इश्यू कराया गया है, जो सन्तोषप्रद माना जा सकता है । 'मीट द फिलॉसफर...', कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत लेखक का तीसरा नम्बर था; इससे पूर्व दो ख्यात विद्वानों का वैसा अभिनन्दन किया गया । पर अभी तक उनसे सम्बन्धित कोई

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ग्रन्थ निकला, इसकी सूचना मुझे नहीं है। प्रथम समारोह में तो विचार का विषय उतने अभिनन्दित विद्वान के निजी विचार न होकर वैशेषिक दर्शन की समवाय की अवधारणा या संप्रत्यय था। दूसरे का विषय भी इक्कीसवीं शती में भारतीय दर्शन का शिक्षण था। व्यक्ति-विशेष के दर्शन पर चर्चा का आदर सम्भवतः प्रस्तुत लेखक को ही दिया गया। विशेष प्रयत्न से आयोजित इस प्रकार की संगोष्ठी प्रो० सच्चिदानन्द मूर्ति के सम्बन्ध में 'एफरो–एशियन कान्फरेन्स' के अवसर पर दिल्ली में आयोजित हुई थी; वहाँ पढ़े गये आलेख प्रकाशित किये जाने की योजना बनी है।

उक्त दो दार्शनिकों से सम्बन्धित ग्रन्थों में दर्जनों विद्वानों द्वारा जिन प्रश्नों और समस्याओं पर, विचाराधीन दार्शनिक के ग्रन्थों व निबन्धों का हवाला देते हुए बहस की गई है, उनका यहां उल्लेख भी सम्भव नहीं है। हिन्दी के अधिकांश पाठक और लेखक भी उस स्तर के विचार-विमर्श के अभ्यस्त नहीं हैं। आवाज उठायी जाती है कि साहित्यकार तथा अन्य लेखक जनता के लिए जनोपयोगी ढंग की चीजें सरल भाषा में प्रस्तुत करें। किन्तु साधारण (बौद्ध मुहावरे में पृथक्जन कहे जाने वाले) जनों में उच्चतर कोटि की निरुपयोगी जिज्ञासा नहीं होती, हो भी नहीं सकती; कारण यह कि अधिकांश लोग कुछ ज़रूरतों के दबाव में और कुछ लोभवश अर्थोपार्जन को जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना लेते हैं। उनके जिन हितों की बात विभिन्न राजनीतिक नेता करते हैं, उनका सम्बन्ध भी उच्चतर जिज्ञासा में उठाने–पनपने वाले प्रश्नों से नहीं होता। वास्तव में वैसी जिज्ञासा और प्रश्नों में अभिरुचि जिस मनोवृत्ति में जन्म लेती है वह राजनीति की दुनिया से दूर की, और ऊपर की, चीज होती है। कष्ट की बात यह है कि वैसे प्रश्नों में अभि-रुचि आज—औरों की बात छोड़िये—विश्वविद्यालय तथा कालेजों के शिक्षकों में भी विरल होती जा रही है। सच यह है कि अपने देश में सर्वत्र संख्या और मात्रा का बोलबाला है। गुणवत्ता, गुणात्मक उत्कर्ष के सम्पादन में रुचि रखने वाले, विभिन्न विद्याओं के क्षेत्र में रस-लोभ से विचरण करने वाले जिज्ञासुओं एवं चिन्तकों की संख्या दिन–ब–दिन क्षीण होती जा रही है।

प्रो० सी० डी० ब्रॉड तथा प्रो० कैसीरर-सम्बन्धी ग्रन्थों का वैचारिक धरातल आधुनिक यूरोप तथा पश्चिमी जगत के उच्चतम वैदुष्य का निदर्शन है। यों आधुनिक यूरोपीय दर्शन का इतिहास उक्त चिन्तकों को उच्चतम श्रेणी में रखेगा—उस श्रेणी में जिसके अन्तर्गत काण्ट और हीगल का ही नहीं,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शॉपेनहावर, नीत्शे आदि का परिगणन होता है—इसमें संदेह है। अंततः उक्त विचारकों का स्थान कहीं प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत तीसरी श्रेणी के दार्शनिकों में ही हो सकेगा। इससे इस स्थिति का बोध व अनुमान किया जा सकता है कि यूरोप में महत्ता के मानदण्ड कितने कड़े बनते गये हैं। लायब्रेरी ऑफ लिविङ् फिलासफर्स में एक ग्रन्थ सर राधाकृष्णन् पर भी प्रकाशित हुआ है, पर इसका आंशिक कारण उक्त विचारक विद्वान का राजनीतिक महत्व भी था। ऊपर की स्थिति पर विचार करते हुए इधर के किसी भारतीय चिन्तक का यह सोचना कि उसकी विचार–पद्धति पर विमर्शपरक ग्रन्थ बने, दुस्साहस अथवा धृष्टता की बात समझी जायेगी। निश्चय ही ऐसी स्थिति, हमारे दर्शन के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में, दुर्भाग्यपूर्ण कही जायेगी। दूसरी ओर, इधर के भारतीय दर्शन तथा इतर क्षेत्रों के विद्वानों के शोध प्रयत्नों तथा चिन्तन प्रयासों पर भी दृष्टि डालते हुए ऐसा नहीं लगता कि यहाँ प्रतिभा की कमी है; हमारे देशवासी परिश्रमशील भी हैं। प्रतिभा तथा परिश्रमशीलता के योग के कारण ही अमेरिका आदि में पहुंच जाने वाले, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में उच्च कोटि का शोधकार्य कर पाते हैं। इस प्रसंग में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि अपने देश से श्रेष्ठ बौद्धिकों अथवा प्रतिभा का पलायन क्यों होता है। इसके कई स्पष्ट कारण हैं जिनमें दो मुख्य हैं; एक जातिगत पक्षपात जो विभिन्न चयन समितियों द्वारा निष्पक्ष चयन कार्य में बाधक हो जाता है। जातिगत पक्षपात के अलावा क्षेत्र विशेष अथवा भाषा विशेष के प्रति निष्ठा भी, अखिल भारतीय स्तर पर, सही चयन में बाधक बन जाती है। एक उदाहरण : शिमला के प्रसिद्ध शोध संस्थान में हिन्दी क्षेत्र के हिन्दी माध्यम में लिखने वाले शोधकर्त्ताओं का चयन कठिनाई से होता है। दूसरा कारण, जो उच्चतर लेखन व चिन्तन के प्रोत्साहन में बाधा देता है, हमारे बौद्धिकों का ईर्ष्यालु स्वभाव है। इस ईर्ष्या भाव का सम्बन्ध भी कहीं जाति से और अन्यत्र क्षेत्र अथवा क्षेत्रीय निष्ठा से जुड़ जाता है। तथाकथित प्रगतिवादियों के अलावा—और यह मेरा व्यक्तिगत अवेक्षण–अनुभव है—कुछ लोग प्रेमचन्द को इसलिए अन्य एक या अनेक कथाकारों (जैसे अमृतलाल नागर) की अपेक्षा में श्रेष्ठतर मानते या कहते हैं कि वे एक विशेष जाति के सदस्य थे। व्यक्तिगत ईर्ष्या का भाव कभी-कभी उनकी अपेक्षा में होता है जिनकी, क्षेत्र विशेष में, समानता करना हम कठिन पाते हैं। इस प्रकार का ईर्ष्या द्वेष पश्चिमी देशों में बिलकुल ही नहीं रहता, यह कहना मानव प्रकृति के यथार्थ के विरुद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किन्तु प्रायः वहाँ योग्यता को मान्यता मिलना अपेक्षाकृत सहज रहता है। अपने देश में, प्रायः हर क्षेत्र में, राजनीति का प्रभाव परिव्याप्त हो गया है; तथाकथित पुरस्कारों की अनुशंसा एवं वितरण में जातिगत तथा दूसरे समीकरणों का निश्चित हाथ रहता है। ऐसी परिस्थिति में विरले ही लेखक और चिन्तक अपनी साधना में अकुंठित भाव से संलग्न रह सकते हैं।

उक्त अवान्तर प्रसंगों से हटते हुए अपनी इधर की चिंतन प्रवृत्तियों का किंचित् उल्लेख करें। प्रस्तुत लेखक का अनुभव है कि किसी भी बड़े विचारक का, उसके दर्शन, साहित्य–समीक्षा आदि से सम्बन्धित चिंतन–लेखन का निकट साहचर्य किसी न किसी रूप में हमारी दृष्टि का उन्मेषक एवं प्रसारक सिद्ध होता है। पूना समारोह में उपस्थित होने के सिलसिले में मुझे दो–तीन आलेख बनाने का आदेश मिला था जिनमें एक का विषय "मेरा बौद्धिक विकास" (My Intellectual Development) निर्धारित किया गया था। उस सिलसिले में मैंने छोटे-बड़े तीन शोध पत्र जैसे भी तैयार किये, इनमें अन्तिम का विषय था, 'द यूनिटी एण्ड सॉलिडेरिटी ऑफ लाइफ' (जीवन सत्व या तत्व की एकता व एकप्राणता)। उक्त आलेख की प्रेरणा प्रसिद्ध फ्रेन्च दार्शनिक हेनरी बर्गसाँ का 'क्रिएटिव इवोल्यूशन' (सर्जनात्मक विकास), खास प्रयोजन से, पुनः पढ़ते हुए मिली। उक्त दार्शनिक ने चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रस्तुत की गयी विकास प्रक्रिया की व्याख्या का खण्डन किया है। डार्विन के अनुसार प्राणधारियों की जैवी संरचना में आकस्मिक परिवर्तन होते हैं जिनमें कुछ जीवनरक्षा में सहायक और दूसरे विसहायक अथवा प्रतिकूल सिद्ध होते हैं। अनुकूल परिवर्तन वाले प्राणी आपसी तथा इतर जीवयोनियों से चलने वाले संघर्ष में विजयी और अस्तित्व रक्षा में सफल होते हैं। क्रमशः अनुकूल परिवर्तन पीढ़ी–दर–पीढ़ी जुड़ते–संगृहीत होते एक नयी, अधिक उन्नत जीव योनि को जन्म देते हैं। यही जैविक विकास की प्रक्रिया है; इस प्रक्रिया का चरम बिन्दु मनुष्य है। यहाँ यह मानकर चला गया कि जैविक विकास की प्रक्रिया प्रयोजनवती या लक्ष्योन्मुख है। बर्गसाँ इस प्रयोजनवाद को स्वीकार नहीं करता, वह न्यूटन के यन्त्रवादी सिद्धांत को भी स्वीकृति नहीं देता। उक्त दोनों मतों के विरुद्ध वह विकास प्रक्रिया की नवोन्मेषशालिनी सर्जनात्मकता का पक्षधर है। किन्तु यहाँ हम बर्गसाँ के अभिमत के दूसरे पक्ष पर जोर देना चाह रहे हैं। बर्गसाँ का कहना है कि जैविक विकास अनेक दिशाओं या रेखाओं के रास्ते घटित हुआ है। एक दिशा में विकास–प्रक्रिया ने बुद्धि सम्पन्न मनुष्य को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्पन्न किया; दूसरी दिशा में ऐसे जीवधारियों को जिनमें मूल प्रवृत्ति या प्रवृत्तियों (Instincts) का परिपूर्ण रूप पाया जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि विभिन्न रेखासरणियों पर बढ़ती विकास-प्रक्रिया ने जिन भिन्न जीव-योनियों को उत्क्षिप्त या गठित किया उनकी ऐन्द्रिय संरचना में विस्मयकारी समानताएं पायी जाती हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे दोनों मार्गसरणियों पर अग्रसर विकास-प्रक्रिया किसी एक नियामक शक्ति द्वारा परिचालित हुई। यह शक्ति प्राणशक्ति या जीवशक्ति है। बर्गसाँ उसे Elan Vital अथवा Vital Impulse नाम देता है। प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्डशॉ ने ऐसी शक्ति को जीव शक्ति (Life Force) आख्या दी। बर्गसाँ ने इस स्थिति की ओर ध्यान दिलाया है कि प्रकृति की चयन-प्रक्रिया द्वारा सर्वत्र ऐसे परिवर्तनों को प्रश्रय दिया जाना जो मिलकर आँख जैसे नाजुक अंग की संरचना में योग दें, जो अच्छे से अच्छे कैमरा से न केवल होड़ लें बल्कि अधिक सक्षम हों, यह भी समझ में आने वाली बात नहीं है; वैसी परिणति भी किसी नियामक कारक शक्ति का संकेत देती है।

इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि विश्व के विविध धर्म–सम्प्रदायों एवं संस्कृतियों से जुड़े रहस्यवादी संत विचारक सदियों से किसी एक सत् या शक्ति का उल्लेख करते आये हैं जो विश्व की भिन्नताओं को एकता सूत्र में बाँधने वाली है। ऐसी शक्ति या सत् को प्रायः विश्व प्रपञ्च की आधारभूत सत्ता के रूप में प्रकल्पित किया जाता है—जैसे अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म के रूप में, सूफी संतों के खुदा या अल्लाह के रूप में, तथा योगाचार बौद्धों के विज्ञान या विज्ञप्ति मात्र के रूप में। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर विश्व प्रपञ्च के मूल में जिजीविषा वृत्ति (Will to Live) को प्रतिष्ठित देखता है; यह वृत्ति या शक्ति बौद्धों की वासना से समानता रखती है जो तथाकथित आलयविज्ञान की विकासोन्मुख गति की प्रेरक है।

प्रस्तुत लेखक को जीवशक्ति की एकता की यह कल्पना रोचक और तथ्यसंगत भी जान पड़ती है। किन्तु इस शक्ति को किसी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर अथवा विशुद्ध चैतन्यरूप ब्रह्म या सांख्य के पुरुष से समीकृत नहीं किया जा सकता। उक्त शक्ति के एकत्व की कल्पना अवश्य ही इस स्थिति की स्वीकारयोग्य व्याख्या करती है कि क्यों हमें जीव शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ बरबस आकृष्ट करती हैं। तरह-तरह के पक्षी और कीड़े–मकोड़े अपने रंग–रूप तथा क्रीड़ा–विलास से गहरे रूप में मनचित्त को आकर्षण में बाँधते हैं; वे हमारी सौंदर्य वृत्ति का प्रमुख क्षेत्र हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वनस्पति शास्त्र के अनुसार फूल पत्तों तथा छोटे बड़े पौधों व वृक्षों में भी जीव शक्ति की उपस्थिति रहती है; जीवयोनियों की भांति उनके अंगों का भी विकास और क्षय होता है।

सर्प और सिंह जैसे खतरनाक जीव भी चिड़ियाघर के पिंजड़ों आदि में आबद्ध आकर्षक जान पड़ते हैं। यह भी ध्यातव्य है कि अधिकांश जीव अकारण आक्रमण नहीं करते; शेर और अजगर जैसे जन्तु भूखे होने पर निश्चय ही आक्रामक बन जाते हैं। यह स्थिति विभिन्न जीवयोनियों के बीच संघर्ष को जन्म देती है—यों एक ही जीव योनि के सदस्य परस्पर को प्रायः अपना खाद्य नहीं बनाते। विभिन्न जीवों के बीच संघर्ष होना एक ऐसी तथ्यस्थिति है जो प्राणतत्व की एकता से विसंगत प्रतीत होती है......।

तात्पर्य यह कि दर्शन की दृष्टि से कोई भी सैद्धान्तिक मान्यता निर्दोष प्रतीत नहीं होती। "विष्णु पुराण" में एक भक्त प्रहलाद यह कहते पाये जाते हैं कि वे सर्वत्र, अर्थात् सब जीवों में, विष्णु या हरि को उपस्थित मानकर उनकी सेवा करते या करना चाहते हैं। बात अच्छी लगती है, पर वह जीवों के पारस्परिक वैरभाव को—भले ही उसकी अभिव्यक्ति खास परिस्थितियों में होती हो—व्याख्यायित करने में असमर्थ है। यों हमारे यहां यह भी मान्यता है कि अहिंसा में प्रतिष्ठित योगी की संन्निधि में विभिन्न जीव अपने वैरभाव का परित्याग कर देते हैं। इसकी विपरीत यथार्थ स्थिति यह है कि प्रबुद्ध एवं विवेकशील मनुष्यों के बीच भी पद, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि नाम या यश के लिए भी निरन्तर संघर्ष रहता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस संघर्ष से विरत रहने वाले—संघर्ष पैदा करने वाली वस्तुओं के प्रति कमोवेश विरक्ति बरतने वाले—लोग हमें अपेक्षाकृत स्नेह और श्रद्धा के भी पात्र जान पड़ते हैं। उस दृष्टि से पूर्णतया विरक्त जनों को हम संत संज्ञा से विभूषित करते हैं—जैसे रामकृष्ण परमहंस और संत फ्रांसिस को। उक्त विरक्ति के तहत "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श को चरितार्थ करने वाले बुद्ध और गाँधी जैसे महापुरुष भी हमें वैसे ही सम्मोहन में बाधते हैं। प्रस्तुत लेखक की दृष्टि में धर्म-अध्यात्म के जीवन का मुख्य तत्व उक्त कोटि के विरक्तिभाव का सम्पादन और कमोवेश चरितार्थन है। हमारी विचार-सरणि में भारतीय संस्कृति में बहुशः प्रशंसित व संस्तुत विरक्ति भावना का अर्थ है: प्रतियोगिता अथवा प्रतिस्पर्धा-परक मूल्यों में संलग्नता व आसक्ति का अभाव; इस कोटि की अनासक्ति की ओर अग्रसर होने की तत्परता कथित आध्यात्मिक साधना का एक महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
पक्ष या अंग है। कहा जा सकता है कि यह पक्ष दूर तक निषेधपरक है; वह हीनयानी बौद्धों का आदर्श रहा है, ऐसा प्रवाद है। उक्त साधना का विधिपरक पक्ष होगा: लोक जीवन से संयुक्त रहते हुए प्राणी मात्र अथवा मनुष्य मात्र के हित में कार्यरत रहना। मनुष्य के हित-साधन का एक रूप है विश्व समाज में परिव्याप्त अन्याय-अधर्म की अनेक रूप शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना। इधर की दो शताब्दियों में कार्ल मार्क्स और महात्मा गाँधी ने, अपने-अपने ढंग से, उस प्रकार के संघर्ष को अपने जीवन का साध्य व लक्ष्य बनाया। स्मरणीय है कि महायानी बौद्ध सम्प्रदाय ने बोधिसत्व के उदार, ऊँचे आदर्श की परिकल्पना की। यह परिकल्पना वेदान्तीय विरक्ति के आदर्श की पूरक कही जा सकती है। प्रस्तुत लेखक ने अपने दर्शन-सम्बन्धी लेखन में भारतीय विरक्तिवाद को इस प्रकार परिभाषित करने की कोशिश की है कि उसके सम्पादन की दिशा में—लौकिक जीवन से संन्यास लिए बिना—क्रमशः अग्रसर हुआ जा सके।

सी० डी० ब्रॉड ने दर्शन के दो प्रकार विविक्त किये हैं, अर्थात् आलोचनात्मक (क्रिटिकल) दर्शन तथा कल्पना गर्भित अथवा कल्पनाश्रित (Speculative) दर्शन। प्राचीन तथा मध्य युग के दर्शनों में कल्पनातत्व का अथवा परिकल्पनात्मक सिद्धांत-निरुपण का तत्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। सांख्य की प्रकृति, न्याय का ईश्वर, स्पिनोजा का द्रव्य तत्व विभिन्न दर्शनों में दी गयी द्रव्य आदि की परिभाषाएं परिकल्पनात्मक बुद्धि की उपज जान पड़ती हैं। अद्वैत वेदान्त का ब्रह्म एक सीमा तक अनुभव गम्य है, इस अर्थ में कि वह स्वयसिद्ध व स्वयंसंवेद्य आत्मतत्व से अभिन्न है। अद्वैत के अनुसार जिसे हम आत्मा कहते हैं वह ज्ञान का विषय न होते हुए भी अपरोक्ष अनुभव में प्रकाशित तत्व है। और क्योंकि अद्वैत के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है, इसलिए ब्रह्म की अलग से सिद्धि अपेक्षित नहीं है।

हम सी० डी० ब्रॉड की ओर लौटें। उनका विचार है कि कल्पना गर्भित चिन्तन पद्धतियाँ उतनी सुप्रतिष्ठित नहीं हो पातीं। इधर का दर्शन अधिकाधिक विचारसरणि अथवा चिन्तन-प्रक्रिया की समीक्षा का रूप धारण करता जा रहा है। प्रस्तुत लेखक ने अपनी "फ्रीडम क्रिएटिविटी एण्ड वैल्यू" पुस्तक में दर्शन को समीक्षात्मक अवगति (Critical Awareness) के रूप में परिभाषित किया है। यों यह ज्ञातव्य है कि आज के पश्चिमी दार्शनिक ईश्वर के अस्तित्व के बारे में विमर्श करना आवश्यक नहीं समझते। केवल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धर्म दर्शन (Theology) के विभागों में ईश्वर विषयक चर्चा चलती है। यों अमेरिका में, और ग्रेट ब्रिटेन या इंग्लैंड में भी ईश्वर विहीन धर्म अथवा "ईश्वर मृत हो गया" से सम्बन्धित धर्म–विज्ञान की चर्चा होने लगी है।

लोग अक्सर बौद्धिकता अथवा बुद्धिनिष्ठ जीवन तथा आस्था या श्रद्धा से समन्वित जीवन के विभेद अथवा द्वन्द्व की चर्चा करते हैं। प्रश्न है, यह बुद्धिनिष्ठा या बुद्धिसंचालित जीवन और स्वयं बुद्धि या (Reason) का स्वरूप क्या है? येल विश्वविद्यालय के प्रो० ब्लेन्शर्ड ने, जो बुद्धिवादी (Rationalist) विचारक माने जाते हैं, अपने निबन्ध में रीजन (Reason) पद के प्रो० ब्रॉड द्वारा प्रतिपादित तीन अभिप्रायों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। वह निबन्ध प्रस्तुत लेखक ने पिछले दो दिनों में पढ़ने की कोशिश की है; उसे समझने–पचाने में समय लगेगा। ब्रॉड के मत को समझने के बाद, और इधर कुछ और मन्तव्यों के परिचय की रोशनी में भी, मुझे Critical Awareness की अवधारणा को पुनः पल्लवित करने का अवसर मिलेगा।

प्रो० ब्रॉड व्यापक जिज्ञासाओं वाले, खुले मस्तिष्क व मनबुद्धि से संयुक्त विचारक है; उन्हें परामनोविज्ञान (Para Psychology) में भी दिलचस्पी रही है। उनके तत्सम्बन्धी विचारों तथा धर्म–अध्यात्म से सम्बन्धित चिन्तन पर लिखे निबन्धों का एक अलग संग्रह है। इन विषयों पर प्रस्तुत ग्रंथ में कई निबन्ध हैं। यूनानी दर्शन तथा हीगल के दर्शन पर स्वतंत्र ग्रन्थों के प्रणेता और धर्म–अध्यात्म विषय के प्रबुद्ध अध्येता एवं विचारक प्रो० डब्ल्यू० टी० स्टेस ने ब्रॉड के धर्म सम्बंधी विचारों पर आलेख प्रस्तुत किया है। दो प्रसिद्ध विद्वानों ने उनके परामनोविज्ञान सम्बन्धी विमर्श पर आलोचनात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ब्रॉड साहब को बौद्ध धर्म एवं उपनिषदों में विशेष अभिरुचि रही; प्रो० स्टेस को भी भारतीय धर्मों का अच्छा परिचय है। अपने निबन्ध के अन्तिम के पूर्ववर्ती पैराग्राफ में प्रो० स्टेस ने ईसाइयों की आत्मा की अमरता सम्बन्धी इस मान्यता कों बचकाना करार दिया है कि वे सब निर्णय–दिवस के अवसर पर कब्र से निकाली जाती है—अपने-अपने पाप-पुण्य के हिसाब के लिए। इसके विपरीत उन्होंने भारतीय धर्मों की मोक्ष की अवधारणा और बौद्ध निर्वाण के सम्प्रत्यय को प्रौढ़तर चिन्तन का निदर्शक घोषित किया है।

ब्रॉड–सम्बन्धी उक्त ग्रन्थ में इतर अनेक विषयों पर समीक्षात्मक निबन्ध हैं जिनका प्रत्युत्तर देने में श्री ब्रॉड ने पूरे 120 पृष्ठ लिये हैं। पाठक अनुमान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
कर सकते हैं कि इस कोटि के श्री पॉल आर्थर शिल्प द्वारा सम्पादित दर्जन से अधिक महाकाय ग्रंथो में कितनी विचारणीय सामग्री एकत्रित की गयी है। इन विद्वानों और उनके अध्ययन के पात्र विचारकों के बारे में पढ़ना श्रमसाध्य एवं सुखद होने के साथ–साथ मन में निरन्तर यह अहसास जगाता है कि दर्शन के क्षेत्र में नितान्त उर्वर रही भा त भूमि के बौद्धिक नेताओं को उस क्षेत्र में भी कितना अधिक काम करना है—कितना परिश्रम, कितनी साधना–चिंतन की दौड में पश्चिमी जगत के सहयात्री बनने के लिए अपेक्षित है। ऐसा नहीं कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत ने, अपनी दर्शन–सम्पदा की पुनर्व्याख्या के साथ-साथ, नये चिंतन की दिशा में प्रगति नहीं की है। किन्तु उस प्रगति में उच्च कोटि के पाण्डित्य का प्रतिफलन अधिक है, मौलिक चिंतन का काफी कम। ध्यातव्य है कि उक्त प्रतिफलन या अभिव्यक्ति का माध्यम प्राय: अंग्रेजी भाषा रही है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक हिन्दी माध्यम से अध्ययन–अनुशीलन करने वाले छात्र और शिक्षक भी घटिया किस्म की राजनीति से तटस्थ होकर सब प्रकार के उच्चतर कोटि के साहित्य की माग और उसे प्रोत्साहित करने के उपाय नही खोज लेते। बलवती जिज्ञासा ही किसी देश अथवा संस्कृति में स्तरीय विचार–विमर्श व चिंतन का आह्वान और पोषण कर सकती है।

श्रेष्टतर कोटि के रचनाकारों और फ्रॉड जैसे चिंतकों के निकट सम्पर्क से एक बड़ा लाभ समस्याओं की जटिलता और अपनी सीमाओं की अवगति के साथ मनचित्त में गहरी विनय–भावना (विद्या ददाति विनयं वाली विनय वृत्ति) का स्फुरण–उपलब्धि है।

विज्ञापन की दरें

इधर कागज और मुद्रण दोनों का मूल्य क्रमश: बढ़ता गया है। यह देखते हुए हमने आगे के अंकों के लिए विज्ञापन की निम्न दरें निर्धारित की हैं :

साधारण पूरा पृष्ठ	100C.00
साधारण आधा पूरा पृष्ठ	600.00
कवर के भीतरी पृष्ठ	1200.00
भीतरी कवर का आधा पृष्ठ	7C0.00
अन्तिम बाहरी कवर पृष्ठ	1500.00

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रो० जगदीश शर्मा : चिन्तन निबन्ध

पथ का अन्वेषण

[प्रोफेसर जगदीश शर्मा हिन्दी के वरिष्ठ, समर्थ समीक्षक हैं जिन्होंने वाल्मीकि और तुलसी से लेकर मुक्तिबोध तक अपनी समीक्षा की कलम चलायी है। प्रस्तुत आलेख में उन्होंने जैसे अपनी दीर्घकालिक समीक्षा साधना के अन्त: सूत्रों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस प्रसंग में उन्होंने कुछ वज़नी मुद्दे विचारार्थ प्रस्तुत किये हैं—विशेषत: कथ्य व रचनाकर्म, कथ्य और विचार व विचारधारा, तथा विचार एवं विचार दृष्टि जैसे कठिन विवादास्पद विषयों से उलझते हुए। यहां वे अपने को मुक्तिबोध के विचारों एवं उनकी रचनात्मकता से प्रभावित भी दर्शित या स्वीकार करते हैं। इस प्रसंग में हम उनसे एक प्रश्न करना चाहेंगे; अपने "कामायनी"–सम्बन्धी लम्बे निबंध में मुक्तिबोध ने उक्त काव्य के विचार पक्ष पर बल देते हुए उसके रचनात्मक वैभव को प्राय: अविश्लेषित छोड़ दिया है—या उपेक्षित; ऐसा क्यों? प्रो० शर्मा ने कथित कलापक्ष और कृति की कलात्मक अपूर्वता (अथवा रचनात्मक ऐश्वर्य एवं वैशिष्ट्य) में अन्तर किया है जो विशेष महत्वपूर्ण है। उनके उक्त अभिमत से दूर तक सहमति प्रकट करते हुए हम यह जोड़ना चाहेंगे कि कोई भी समर्थ रचनाकार अपने लेखन में किसी विचारधारा का अनुवाद नहीं करता, वह सपाट रूप में विचारों का उल्लेख भी नहीं करता। उसकी रचना में विचार-तत्व दृष्टिभंगी के रूप में प्रतिफलित होता हुआ रचनागत समग्र बिम्ब सामग्री को नये भावैश्वर्य से मण्डित करता है, वह उसकी स्तरगत ऊंचाई को भी प्रभावित करता है। इन तत्वों के प्रति न्याय कर सकने के लिए समीक्षक में दृष्टि अथवा विचारगत जटिलता को देखने–परखने की विकसित क्षमता होनी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
चाहिए—अर्थात् स्तरीय युगीन चिन्तन, और उसमें समाहित क्लासकी अतीत के अवबोध में निहित उच्चकोटिक चिन्तन की सम्वेदित पहचान और समझ। वैसी समझ की अपेक्षी रचना के उदाहरण स्वरूप तुलसी की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं : "भरतहिं होय न राजमद विधि-हरि-हर पद पाइ" तथा "लव निमेष परमाणु जुग मास बरस सरचंड···काल जासु कोदंड"। स्मरण नहीं कि स्वयं रामचंद्र शुक्ल ने महाकवि तुलसी के इस कोटि के उदात्त भाव पक्ष को सटीक ढंग से रेखांकित किया है। समृद्ध रचनाकर्म का यह पक्ष अधिक सार्थक विमर्श और बहस का विषय बनाया जा सकता है। डॉ० शर्मा के निबन्ध का स्वागत करते हुए हम चाहेंगे कि हमारे समर्थ आलोचक असाहित्यिक किस्म के, चालू, घटिया वाद-विवादों से अलग हटकर अपने-अपने आलोचक की विकास यात्रा का विवरण देने वाले निबंध प्रस्तुत करें। "युगसाक्षी" ऐसे निबंधों का स्वागत करेगा। —संपादक]

आम तौर पर यह माना जाता है कि एक असफल रचनाकार आलोचक बन जाता है, लेकिन तथ्यों के प्रकाश में यह मान्यता टिक नहीं पाती। अच्छे आलोचकों की सूची तैयार की जाए तो पता चलेगा कि वे प्रायः दो क्षेत्रों से आते हैं : या तो अपने अध्यापकीय कर्म को गम्भीरता से लेने वाले शिक्षाकर्मी अच्छे आलोचकों के रूप में सामने आए हैं या सचेत साहित्य-स्रष्टा। शिक्षाकर्मी हो या रचनाकार, जब भी वह आलोचक की भूमिका में उतरता है तो उसके सामने एक प्रश्न होता है : किसी साहित्यिक कृति, धारा या युग को मूल्यवान बनाने वाली चीज़ क्या है ?

समीक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर दिखाने की आकांक्षा से प्रेरित व्यक्ति को इस प्रश्न से जूझना होता है; आरम्भ से अन्त तक उसे भटकने से बचने के लिए अपने विवेक को निरन्तर जागरित रखना होता है। मार्ग की खोज में निकलकर अनजाने ही भटक जाने की स्थिति सबसे पहले वहीं आती है जहाँ वह इस पथ पर बढ़ने के लिए प्रकाश की आशा से पहुंचता है। विश्वविद्यालयों के साहित्य-विभागों में उसे प्रायः पाठ्यक्रम पुराना और अध्यापक शास्त्रीयताग्रस्त मिलते हैं। नाटक का अध्यापन करना हो तो मोहन राकेश के नाटकों से आगे की जानकारी उसे उपलब्ध नहीं होती और उसकी नाटक की समझ का विकास नाटक के तत्वों के विवेचन द्वारा करने का प्रयास किया जाता है। यही बात अन्य विधाओं के संदर्भ में भी कही जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लेकिन सर्वांश में ऐसा नहीं है। कुछ कम ही सही लेकिन आज भी साहित्य के ऐसे अध्यापक विश्वविद्यालयों में मिल जाते हैं जो सीधे समकालीन रचनाशीलता से जुड़े हैं; वे स्वयं रचनाकार हों या नहीं, रचनाकारों की दुनिया से जुड़े होते और साहित्य-जगत् में जो भी महत्वपूर्ण हो रहा है उसकी जानकारी के लिए प्रयत्नशील रहने के साथ साहित्य की मूल्यवत्ता के मर्म की खोज में अपनी आँखें खुली रखते हैं। साहित्य का जिज्ञासु अध्येता उनके सम्पर्क से लाभ लेने का प्रयत्न कर सकता है, लेकिन उससे काम नहीं चलता। "गुरू" की खोज में निकला जिज्ञासु बहुत बार "चेले मूंड़ने वालों" के हाथों ठगा जाता है।

इस स्थिति में वह परम्परा से ही प्रकाश ग्रहण कर सकता है। अपने लिए रास्ता खोजते समय उसके मन में यह प्रश्न उठे बिना नहीं रह सकता कि उसके पूर्वज किस रास्ते गये हैं। मानसकार उसे याद दिला सकता है :

अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहिं
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं।

राजाओं द्वारा निर्मित सेतु उपलब्ध होने पर भी चलना तो पिपीलिका को ही होगा। उसके सामने सबसे बड़ा संकट, मुक्तिबोध के शब्दों में, यह होता है कि :

एक कदम रखता हूं कि सौ राहें फूटतीं

और तब साहित्य का विद्यार्थी अपने आप को चौराहे पर खड़ा पाता है। रचना की जुगाली करते हुए साहित्य-समीक्षक कहलाने का लालच उसके मन में आ सकता है। यदि वह पुरातत्व-प्रेमी हुआ तो साहित्य को खोदकर उसमें से प्राचीन काल की जानकारी निकाल सकता है, जैसे : सूरदास के समय में स्त्रियां कैसे आभूषण पहनती थीं और बिहारी के समय दरबारियों के आपसी सम्बन्ध कैसे होते थे ? यदि कुछ अधिक गम्भीर हुआ तो साहित्य के प्रकाश में दार्शनिक प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयत्न कर सकता है या किसी विचार-धारा के प्रति आग्रह व्यक्त करते हुए उसके आधार पर साहित्य का मूल्य निर्धारित करने की चेष्टा कर सकता है।

बहुत बार आलोच्य साहित्य हाशिये पर चला जाता है और अवधान का केन्द्र ऐसा कुछ बन जाता है जो साहित्य के लिए कच्चा माल होने के नाते तो विचारणीय हो सकता है, रचना के नाते नहीं। लेकिन संगठित बुद्धिजीवियों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में सम्मिलित होने के मोह में जिज्ञासु प्रायः पटरी से उतर जाता है और साहित्य का मूल्यांकन छोड़कर विचारधारा और संगठन से जुड़ जाता है। वह यह भी नहीं देखता कि विचारधारा की ओर उन्मुख होते हुए भी विवेकी साहित्यकर्मी अपनी सप्रश्नता सुरक्षित रखते हैं।

इस प्रसंग में मुक्तिबोध का नाम बेखटके लिया जा सकता है। वे अपनी मार्क्सवादी साहित्य-दृष्टि के लिए प्रसिद्ध हैं, लेकिन यदि उन्हें कहीं और से भी प्रकाश मिला है तो उसमें उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि को आड़े नहीं आने दिया है। साहित्य की रचना-प्रक्रिया को उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर समझा है और उसकी पुष्टि के लिए जो सैद्धांतिक आधार उन्हें अपने अनुभव के निकट प्रतीत हुआ है, उसे उन्होंने स्वीकार किया है; भले ही वह मार्क्स-वादी साहित्य-दृष्टि के विरुद्ध पड़ता हो। नई कविता का आत्मसंघर्ष में संकलित "काव्य की रचना प्रक्रिया" शीर्षक निबंध मे उन्होंने लिखा है :

> "वीरान मैदान, अंधेरी रात, खोया हुआ रास्ता, हाथ में एक पीली मद्धिम लालटेन। यह लालटेन समूचे पथ को पहले से उद्घाटित करने में असमर्थ है। केवल थोड़ी-सी जगह पर ही उसका प्रकाश है। ज्यों-ज्यों वह पग बढ़ाता जायेगा थोड़ा-थोड़ा उद्घाटन होता जायेगा। चलने वाला पहले से नहीं जानता कि क्या उद्घाटित होगा। उसे अपनी पीली मद्धिम लालटेन का ही सहारा है। इस पथ पर चलने का अर्थ ही पथ का उद्घाटन होना है, और वह भी धीरे-धीरे, क्रमशः। वह यह भी नहीं बता सकता कि रास्ता किस ओर घूमेगा......। × × × कोई भी रचनाकार यह जानता है कि रचना बढ़ते जाने के मार्ग का नक्शा पहले से नहीं बनाया जा सकता, और यदि बनाया गया तो वह यथातथ्य नहीं हो सकता।"

यह लिखते समय उन्हें यह आशंका हुई है कि "बहुतेरे लोग यह आरोप लगायेंगे कि यहाँ किसी अवचेतनवादी सिद्धांत का निरूपण हो रहा है।" लेकिन उन्हें अपना अनुभूत सत्य किसी भी सैद्धांतिक आग्रह से बड़ा प्रतीत हुआ है।

इस खुलेपन के अभाव में आलोचना के बने-बनाये रास्ते तो बहुत मिल जायेंगे, लेकिन उदीयमान आलोचक को अपना कोई रास्ता तब तक नहीं मिल सकता जब तक अपने-आपको सभी विचार-दृष्टियों के लिए खुला रखते हुए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वह स विषय में स्पष्ट न हो कि वह क्या चाहता है। साहित्य की स्थापित विधाओं के तत्वों और प्रतिमानों की धारणा उसे बहुत दूर तक नहीं ले जा सकती, अपने से पहले के आलोचकों का कृतित्व भी कुछ संभावनाओं की ओर संकेत भर कर सकता है, उसे कोई पथ प्रदान नहीं कर सकता।

कालजयी कृतियो को समझने का प्रयत्न अवश्य ही इस समस्या से जूझने में सहायक हो सकता है। उनके अध्ययन से वह काल पर कृतियों को विजय दिलाने वाले उपकरणों का पता लगा सकता है। साहित्य की मूल्यवत्ता के सम्बंध में सैद्धांतिक चर्चाओं को मान्य या अमान्य करने के लिए उसे कृतियों के भीतर से शक्ति मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, "तुलसीदास दीप की बातन्ह तम निबृत्त नहिं होई।" आलोचना–पथ का नया–नया पथिक जब कृतियों के भीतर पैठता है तो पाता है कि स पूर्ण साहित्य या किसी एक साहित्यिक विधा के सम्बंध में निर्धारित प्रतिमानों के सहारे किसी कृति का वैशिष्ट्य नहीं उभारा जा सकता। सामाजिक निर्माण, सांस्कृतिक उन्मेष या मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि खोजने पर रचना की अपनी दीप्ति आलोकित नहीं होती। ऐसा करने पर हम या तो साहित्य को एक उपयोगी साधन मानकर उसकी उपयोगिता परखते हैं या उसे ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अनुगामी–अधिक–से–अधिक कहें तो उनका सहगामी मानकर—उसकी प्रतिबिम्ब धर्मिता में उसकी सार्थकता खोजते हैं। ऐसी स्थिति में हम भूल जाते हैं कि प्रत्येक कृति अपने आप में स्वतंत्र और सम्पूर्ण रचना होती है जिसका अपने ढंग का अकेला और अपूर्व गठन हमें उसके सौन्दर्य को उसके अपने भीतर से समझना आवश्यक कर देता है। इसमें यह भी निहित है कि साहित्यिक कृति अपने विधान, गठन या संरचना में ही कृति होती है, और उसका सर्जनात्मक वैभव ही वह मूल्य है जिसके नाते हम उसे मान्यता देते हैं; किसी कृति का कथ्य कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, कृति के सर्जनात्मक वैभव के अभाव में वह अप्रासंगिक हो जाता है और साहित्य--समीक्षा के लिए विचारणीय नहीं रह जाता। इसके ठीक विपरीत कथ्य की दृष्टि से या कृति में व्यक्त विचारों की दृष्टि से जो रचना महत्त्वहीन ही नहीं, अवांछनीय भी प्रतीत हुई है, खींच-तानकर उसके विचारों को स्वीकार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते वे आलोचक दिखलाई दे जाते हैं जो विचार को ही रचना के महत्व का मूल आधार मानते रहे हैं। उल्लेखनीय है कि ऐसा उन्हीं कृतियों के संदर्भ में हुआ है जो अपने सर्जनात्मक उत्कर्ष के कारण पहले ही प्रतिष्ठा अर्जित कर चुकी थीं। यही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
स्थिति एक अन्य रूप में ऐसे कवियों के विषय में दिखलाई दी है जो अपनी कृतियों के साहित्यिक सौन्दर्य के लिए सम्मान भाजन बन गये थे। कालिदास के काव्य को त्याग–तपस्या जैसे मूल्यों के प्रतिपादन के नाते महिमामय सिद्ध करने के प्रयत्न हमारे आलोचकों ने किए और तुलसी दास को प्रतिगामी विचारों के लिए कोसे जाने पर उनके काव्य में 'मानवता के शिखर' खोजकर उन्हें महान् सिद्ध करने के प्रयास सामने आये––शायद इसलिए कि तुलसीदास अपने काव्य के सर्जनात्मक वैभव के बल पर पहले ही प्रतिष्टा अर्जित कर चुके थे।

यह मान लेने के लिए कोई उचित आधार दिखलाई नहीं देता कि महान् विचारों के साथ सर्जनात्मक प्रतिभा का योग अनिवार्यत: रहे। इसी प्रकार यह मानने के लिए भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि मौलिक या उत्तम विचारों के अभाव में कोई व्यक्तित्व सर्जनात्मक प्रतिमा से वंचित रहने के लिए विवश है। वास्तव में विचारशीलता और सर्जनात्मक प्रतिभा परस्पर स्वतंत्र है—वे एक-दूसरे के साथ रह भी सकती हैं और नहीं भी। इस स्थिति में विचारों के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन मुझे असंगत प्रतीत होता है। यह बात अब किसी से छिपी नहीं रही है कि साहित्य प्राय पहले से उपलब्ध विचारों को वाणी देता है, नूतन और मौलिक विचारों का प्रतिपादन प्राय. नहीं करता। तो, जब विचार गृहीत हों, रचना या रचनाकार के अपने न हों तब उन्हें साहित्य के मूल्यांकन का आधार बनाने में कोई तुक दिखलाई नहीं देती। यशपाल ने मार्क्सवादी विचार अपने साहित्य में व्यक्त किये हैं, इसमें उनका अपना क्या है? उनका अपना जो है वह तो उनकी कृतियों का सर्जनात्मक वैशिष्ट्य है, इसलिए न्यायत: उनका मूल्यांकन उसी के आकलन से हो सकता है। लेकिन यदि यशपाल को उनके विचारों के सम्बंध से प्रशंसनीय समझा जायेगा तो इसका परिणाम एक वैचारिक आग्रह को जन्म देने के रूप में सामने आएगा जिसकी परिणति यह होगी कि जो इस विचार को स्वीकार न करे वह घटिया साहित्यकार मान लिया जाएगा।

जब उच्च कोटि का रचनाकार किसी विचारधारा को अपना लेता है तो उस विचारधारा के पक्षधर समीक्षक उस रचनाकार को विचारधारा के फीते से ही नापने लगते हैं। मुक्तिबोध के काव्य का उदाहरण हमारे सामने हैं। अपने अवचेतन के चेतनीकरण की प्रक्रिया से फेंटेसीसर्जन के माध्यम से उन्होंने दु:स्वप्नों की शक्ति का परिचय अपनी काव्य–रचना में दिया है; उसकी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
अपूर्वता की उपेक्षा कर आलोचकों ने अपनी शक्ति उनके काव्य में मार्क्सवादी विचार-दृष्टि के उद्घाटन में लगा दी है, या फिर उसके निषेध में। यह रुख करते समय उन्होंने मुक्तिबोध के काव्य के रचना-वैशिष्ट्य की उपेक्षा पूरी कर दी है। ऐसे आलोचक यह भूल गये हैं कि यदि मुक्तिबोध की कविता में यह वैशिष्ट्य नहीं होता तो वे भी अन्य असंख्य मार्क्सवादी कवियों की तरह एक सामान्य कोटि के रचनाकार होते और उस स्थिति में वे हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते। उनकी विचारधारा इसीलिए विचारणीय बन सकी है कि उनकी रचनाशीलता एक अपने ही ढंग के कला-वैशिष्ट्य से संपन्न है। निश्चित रूप से मुक्तिबोध का काव्य का विचार अपनी कलात्मक अपूर्वता के कारण ही प्रासंगिक है, उसके अभाव में वह उपेक्षणीय ही रह गया होता। इसलिए साहित्य में विचार और विचारधारा की बात कोई उठाना ही चाहे तो उठा सकता है, लेकिन उसका स्थान कलात्मकता के बाद ही रहेगा।

कलात्मक अपूर्वता तथाकथित कला-पक्ष से भिन्न वस्तु है। कला-पक्ष की बात उठाने पर भाव-पक्ष को उससे स्वतंत्र रूप में मान्यता देनी होगी जबकि कलात्मक अपूर्वता सर्जनात्मक वैशिष्ट्य का दूसरा नाम है और यह वैशिष्ट्य रचना-पद्धति की समग्रता में से व्यक्त होता है। मुक्तिबोध ने 'तीसरा क्षण' निबंध में संवेदनाघात से कल्पना-चित्रों की सृष्टि और इस सृष्टि के भाषा में संघर्षपूर्ण अवतरण की जिस गतिमयी प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है उसमें रचनाकर्म अपनी गतिशील संश्लिष्टता में ही कला-वस्तु का रूप लेता है। हमारे सामने उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता या ललित निबंध के रूप में जो कला-वस्तु आती है वह वास्तव में कोई भौतिक पदार्थ न होकर रचनाकार की मनोयात्रा का दृश्य/श्रव्य/दृश्य-श्रव्य अंकन होती है। कामायनी जिल्दबंधी पुस्तक नहीं है, वह 'प्रसाद' के संवेदनाहत मन के कल्पना-साक्षात्कारों के भाषा में ढलने की पूरी प्रक्रिया का अंकन है, यह अंकन पुस्तक रूप में उपलब्ध हो सकता है, यही कैसेट पर रह सकता है या मौखिक रूप से सुनने को मिल सकता है। अतएव किसी साहित्यिक कृति का मूल्यांकन उस कर्म का मूल्यांकन है जो उस साहित्यिक सृष्टि में प्रकट होता है जिसे हम कृति या रचना कहते हैं। यह अकारण नहीं है कि साहित्यिक कला-वस्तु भारतीय भाषाओं में कृति और अंग्रेजी में वर्क (Work) कही जाती है।

साहित्य में यह कृतित्व शब्दार्थ के सायुज्य में आकार ग्रहण करता है, इसीलिए उसके मूल्यांकन में आलोचक का अवधान अनेक बार 'रचना' या

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
'कृति' से स्खलित होकर अर्थ पर केन्द्रित हो जाता है। अधिसंख्य लोगों में रचना-कर्म की समझ नहीं होती और अर्थ की चर्चा में व्यापक जन-समुदाय की रुचि होती है, इसलिए समीक्षा अपने-आप को अधिसंख्य पाठकों के लिए ग्राह्य बनाने के फेर में 'अर्थ' या अंतर्वस्तु के विवेचन-विश्लेषण में ही अपनी सार्थकता समझने की भूल करती है। यही नहीं, अर्थ या अंतर्वस्तु के विवेचन-विश्लेषण में रमकर समीक्षा साहित्यिक समझ से सम्पन्न एक बहुत ही सीमित पाठक वर्ग के घेरे को लांघकर साहित्य को दूसरे-दूसरे क्षेत्र के लोगों तक पहुंचाने में अपनी सार्थकता का अनुभव करने लगती है, पर अंतर्वस्तुलक्ष्यी समीक्षक विशाल पाठक-समुदाय तक साहित्य को नहीं, उसके अर्थ को ही पहुंचा पाते हैं। **साहित्य अर्थ में नहीं. अपने सर्जनात्मक वैशिष्ट्य में निहित होता है** जिसे इस ढंग के समीक्षक छू नहीं पाते और जिसमें उस विशाल पाठक समुदाय की रुचि नहीं होती जिसकी ओर उनकी समीक्षा अभिमुख होती है। इसी कोटि के समीक्षकों के लिए आर्किबाल्ड मैक्लीश को यह लिखना पड़ा था कि कविता के लिए अर्थ नहीं, अपना 'होना' प्रयोजनीय होता है :

A poem should not mean
But be

रचनाकार **आकार ले रही** रचना के भीतर से गुजरता है तो आलोचक **आकार ले चुकी** रचना के भीतर से। इसलिए रचनाकार और आलोचक की यात्रा परस्पर विपरीत दिशाओं में होती है। रचयिता संवेदनाघात से आरम्भ कर कल्पना-चित्रों से होता हुआ उनके भाषिक अंकन की दिशा में चलता है जबकि आलोचक के सामने सबसे पहले भाषिक परिणति होती है, इसलिए वह सबसे पहले शब्द को पकड़ता है, फिर उसके अर्थ के भीतर उतरकर कल्पना-चित्रों में विरमते हुए रचनाकार के संवेदनाघात तक पहुंचता है। **रचनाकार के लिए संवेदना साध्य और उसका विधाना साधन नहीं होता; संवेदना से चित्र-विधान और शब्दांकन तक उसकी यात्रा अखंड रूप से होती है,** उसी प्रकार आलोचक को शब्दांकन से संवेदनाघात तक अखण्ड यात्रा पर निकलना होता है। संवेदनाघात तक पहुंचने पर आलोचक को रचयिता की संवेदना के भीतर समाया हुआ विचार भी हाथ लगता है और उस समय वह अपनी यात्रा की समग्रता को एक ओर छोड़कर विचारों के मूल्यांकन में व्यस्त हो सकता है, जैसा कि आजकल अनेक आलोचक कर रहे हैं--वे संवेदना तत्त्व को अनचीन्हा छोड़कर केवल विचारों का मोल आँकने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एसा करना साहित्य की अपनी गतिशील संश्लिष्टता की अवमानना का द्योतक है। **वस्तुत: साहित्य में विचार नहीं, विचार-दृष्टि महत्वपूर्ण होती है, जो संवेदना में अंतर्लीन रहती है।** उदाहरण के लिए सूरदास ने अपने विचार कहीं भी अनावृत रूप में व्यक्त नहीं किये हैं, फिर भी उनके काव्य में एक विचार-दृष्टि विद्यमान है और उनकी कल्पना का स्वरूप उससे निर्धारित हुआ है। ऊंच–नीच के विरुद्ध सूरदास ने खुलकर एक शब्द भी नहीं कहा है, फिर भी उनकी भक्ति से लेकर ग्राम्यत्व, नारीत्व, अपढ़ होने में गौरव की अनुभूति तक सामान्य जन की जो प्रतिष्ठा है और राजा, नागर, ज्ञानी पुरुष के बड़प्पन के प्रति जो चुनौती उनकी उक्तियों में समाई हुई है, उसमें उनकी कथनभंगिमा में झलक रही संवेदना के भीतर समायी हुई विचार–दृष्टि उन्मीलित होती है। मैं समझता हूं कि आलोचना की सार्थकता विचारों के मोल में निहित न होकर उस सश्लिष्टता के उन्मीलन में है जिसकी समग्रता रचना कहलाने की अधिकारी होती है।

संश्लिष्ट समग्रता का एक और सशक्त उदाहरण मीराबाई की काव्य–रचना है। इस कवयित्री ने सामंत मूल्यों और मान्यताओं तथा समाज में विद्यमान श्रेणीभेद के विरोध में कहीं भी अनावृत विचार व्यक्त नहीं किए हैं, फिर भी उनकी कथनभंगिमा में श्रेणीभेद और सामंती मूल्यों को दी गई चुनौती सामने आती है। रोचक तथ्य यह है कि उन्होंने यह सब लोक के धरातल पर या किसी सामाजिक समस्या के संदर्भ में नहीं, भक्ति के धरातल पर किया है। 'म्हाँ गिरधर आगाँ णाच्या री' का संदर्भ भक्ति का है, लेकिन इस संदर्भ में वे जब घोषणा करती है, "लोकलाज कुलरी मरजादा नेक न राख्याँ री", तो वे सामाजिक विद्रोह को वाणी देती हैं जिसके प्रति उनकी दृढ़ता एक अन्य पद में अपनी बदनामी का आनन्द लेने की झलक देने वाली शब्दावली में छलक रही है।

> लोग कह्याँ मीराँ भई बावरी, सासु कह्याँ कुलनासी री
> बिखरो प्यालो राणाभेज्याँ, पीवाँ मीराँ हाँसी री।

इस प्रकार की संवेदना–समाहित विचार–दृष्टि की अभिव्यंजना के समक्ष किसी कवि के अनावृत विचार कितने ही प्रासंगिक, प्रचण्ड और लोक-मंगलकारी क्यों न हों, वे मूल्यवान रचना कहलाने के अधिकारी नहीं होते। मेरी दृष्टि में कबीर, इसीलिए, मीरा और सूरदास से बड़े कवि नहीं हैं, भले ही हिन्दी के मध्यकालीन साहित्यकारों में उन्हें सबसे बड़ा क्रान्तिचेता माना

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जाता हों। बड़ा क्रांतिचेता होने से कोई अनिवार्यतः बड़ा रचनाकार नहीं हो जाता।

सर्जन की संश्लिष्टता में कल्पना की स्थिति केन्द्रीय होती है। अनुभूति कितनी ही प्रगाढ़ क्यों न हो उसके अभाव में सर्जनात्मक उत्कर्ष से वंचित रह जाती है। अनुभूति की प्रामाणिकता भी रचनाकार की कल्पना के माध्यम से ही उद्भावना में ढलती है। कल्पना–वंचित अनुभूति अपने आप में रचनात्मक नहीं हो सकती। रचना–सौन्दर्य के घटक–रूप मे वैचारिक दीप्ति का जो योग-दान दिखलाई देता है, वह भी कल्पना–प्रसूत अन्तर्दृष्टि से ही निष्पन्न होता है। कल्पना की भूमिका को चित्र–विधान या सम्मूर्तन में परिमित करने से भी भ्रान्त निष्कर्ष सामने आते हैं। साहित्य में कल्पना की भूमिका बहुमुखी होती है : यह संवेदनाघात को कल्पना–चित्रों में परिणत करती है, साहित्य में उठाए गए मुद्दों की समझ और उनके हल की दिशा खोजने के लिए रचनाकार को अंतर्दृष्टि प्रदान करती है जो बहुत बार वैचारिक दीप्ति के रूप में सामने आती है; साथ ही माध्यम पर काबू पाते हुए सौष्टव और विलक्षणता उत्पन्न करने में योगदान करती है। सारा अभिव्यक्ति–पक्ष—अप्रस्तुत विधान से लेकर वर्ण–विन्यास तक—रचनाकार की कल्पना की देन होता है। उदाहरण के लिए तुलसीदास और निराला की काव्य–भाषा मे वर्णों की आवृत्ति से जो संगीत उत्पन्न हुआ है, वह इन दोनों कवियों की कल्पनाशीलता का परिचायक है। माध्यम की समझ कल्पनाशीलता के बिना सम्भव नहीं होती। इस प्रकार साहित्य में कल्पना–चित्रों से लेकर शब्द–चयन और उनसे वाक्य–गठन तक कल्पना की निर्णायक भूमिका रहती है, जिसको समझना साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए अपरिहार्य है। इस दृष्टि को कलावाद का नाम देकर उससे कोई किनारा करना चाहे तो यही समझना चाहिए कि उसकी रुचि साहित्य में न होकर किसी अन्य वस्तु में है।

अलंकार–ग्रन्थों में विभिन्न अलंकारों के रूप में कल्पना–सृष्टि के कुछ निश्चित रूपों की चर्चा की गई है, किन्तु प्रत्येक प्रतिभाशाली रचनाकार बनी-बनाई कल्पना–सरणियों का अतिक्रमण कर अपने ही ढंग से नई सृष्टि करता है—यहाँ तक कि सादृश्य–बोध तक को वह रचना में खपा देता है। अपने काव्य की सामाजिक अर्थवत्ता के लिए चर्चित कबीर जैसे कवि ने भी अनेक बार अपने अप्रस्तुत–विधान में प्रस्तुत को इस प्रकार खपा दिया है कि दोनों के मध्य कहीं कोई जोड़ दिखलाई नहीं देता है, जैसे —

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कबिरा बादल प्रेम का हम पर बरसा आइ,
अंतर भीगी आतमाँ हरी भई बन राइ।

प्रेम के बादल की कल्पना में प्रस्तुत–अप्रस्तुत इस प्रकार गुंथ गए हैं कि आगे चलकर दोनों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं रह गई है और कबीर ने कहीं प्रस्तुत को तो कहीं अप्रस्तुत को ही सामने लाकर रूपक का भान बनाए रखा है। दूसरी पंक्ति में पहले आत्मा के भीगने की कल्पना में रूपक का निर्वाह अप्रस्तुत के अभाव में हुआ है, बाद में वन–राजि के हरे होने की कल्पना ने अप्रस्तुत के ही बल पर रूपक की प्रतीति बनाए रखी है।

इसी प्रकार जयशंकर 'प्रसाद' ने कामायनी में हिमालय के प्रति श्रद्धा के कौतूहल में उसके सादृश्य का उपस्थापन इस प्रकार किया है कि अप्रस्तुत प्रस्तुत का नए रूप में साक्षात्कार प्रतीत होता है और सादृश्यबोध उसमें खो जाता है:

दृष्टि जब जाती हिम गिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर
धरा की यह सिकुड़न भयभीत
अरे क्या है ? कैसी है पीर ?

प्रस्तुत–अप्रस्तुत सम्बन्ध में ही नहीं, पूरी काव्य–सृष्टि में कल्पना असंख्य रूपों में उदित होती है। विशिष्ट कवियों में उसकी विशिष्ट भंगिमाएं चीन्ही जा सकती हैं, किन्तु उनकी कोई परिमिति नहीं है। जयशंकर प्रसाद का काव्य कल्पना के गुंथाव के नाते उल्लेखनीय है तो निराला का काव्य कल्पना की समानांतर गति के नाते; फिर भी प्रत्येक समर्थ कवि में उसकी भंगिमा अपना अलग ढंग लिए होती है और समर्थ आलोचक उसके उस ढंग की पहचान करता है जो उसे अपने पूर्ववर्ती और समकालीन कवियों से अलग करता है।

कल्पना–वैशिष्ट्य कवि के भिन्न प्रकार के भाषिक व्यवहार का भी जनक होता है, जैसे प्रसाद के काव्य में कल्पना के गुंथाव की परिणति लम्बे, भिन्न वाक्यों की संश्लिष्टता में हुई है तो निराला की कविताओं में कल्पना की समानांतरता क्रिया–विरल संयुक्त वाक्यों की समानाधिकरण–प्रवृत्ति और समास–संकुलता में।

समीक्षक को भाषा–प्रयोग के भीतर से रचनाकार के कल्पना–वैशिष्ट्य को खोजते हुए अंततः उसके संवेदनाघातों को उन्मीलित करना होता है औ इस प्रकार काव्य-रचना को परत-दर-परत भेदते हुए वह अंततः रचनाकार के काव्य मानस की समझ विकसित करता है। इस समझ के लिए वह बाह्य-संदर्भों का उपयोग भी कर सकता है, लेकिन हर हालत में उसका लक्ष्य काव्य–कृति ही रहेगी, अन्यथा उसकी समीक्षा साहित्य–समीक्षा नहीं बन सकेगी; अधिक-से-अधिक होगा तो वह साहित्य के विषय में समीक्षा बनकर रह जाएगी, साहित्य की समीक्षा नहीं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉ० सुरेंन्द्र वर्मा : समीक्षित संस्मरण

'जो बंध नहीं सका'

गिरिजा कुमार माथुर, जो बंध नहीं सका, अन्ततः मुक्त हो गया। मुक्त हो गया उस देह बंधन से भी जिसके रस और जिसकी गंध में लिप्त उसका मन देह–स्वप्न देखता था और जिसके आलोक में उसने अपना समस्त काव्य संसार रचा था।

गिरिजा कुमार माथुर केवल एक कवि का नाम नहीं है बल्कि एकाधिक काव्य–युगों के ऐसे एक द्रष्टा का नाम भी है जो उनमें से गुजर तो जरूर गया लेकिन उनका खरीदार नहीं रहा। उसे, सच ही, 'दूरी से छूकर ही निकल गईं घटनाएं।'

हिन्दी के वरिष्ठ कवि गिरिजा कुमार माथुर किसी भी साहित्यिक आन्दोलन से कभी बंध नहीं पाए, फिर भी हर एक में सम्मिलित रहे। जब उन्होंने लिखना आरम्भ किया था तब उत्तर प्रदेश में (जो उन दिनों यू. पी. था) छायावाद और रहस्यवाद का बोलबाला था। किन्तु मध्य प्रदेश में जन्मे गिरिजा कुमार उत्तर प्रदेश के उस वायवी काव्य संसार को स्वीकार न कर सके। उनकी पहचान तार सप्तक से बनी थी, किन्तु वे प्रयोगधर्मिता, प्रगतिशील धारा और नई कविता में अपना योगदान देते हुए भी जिन्दगी से जुड़ी अपनी अलग जमीन पर खड़े रहे। उनकी प्रेरणा भूमि में परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों का आकर्षण रहा। उन्होंने आधुनिकतम जीवन–मूल्यों को भी जन–परंपरा से जोड़ कर और उन्हें उसके अनुरूप ढालकर ही स्वीकार किया। उनके समय के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
तमाम काव्य–आन्दोलनों के बीच सतरंगी लोक चेतना ही उनकी अलग आधार-भूमि रही थी।

गिरिजा कुमार माथुर मुख्यत: देह–रस के कवि हैं। उनका कवि–मन देह–रस और देह–गंध और देह–स्वप्न में लिप्त, प्रकृति और नारी सौन्दर्य से कभी अघाता नहीं। सौन्दर्य की इन दोनो कोटियों में वे अक्सर भेद भी नहीं करते।

> लहरदार कटि/बाँके उभरे नितंब/खुली काँपती सी/हथेली नरम/सुबह/बुंदकियोंदार मेंहदी लगा/पांव में सांझ का आलता/हरी धूप में किरन सी लता......
>
> (पृष्ठ 73)

इसका एक कारण शायद उनके बचपन की प्राकृतिक पृष्ठभूमि रही है। उनके समय और उनकी कविता के पीछे एक पूरा मनोवैज्ञानिक–सामाजिक और भावात्मक संसार है। एक किसान के घर उनका जन्म हुआ था और बचपन गाँव में ही बीता। विन्ध्याचल की पहाड़ियों और मीलों दूर फैली लाल पठार की ऊंची भूमि और साथ ही काली मिट्टी के सांवले खेत से बना मालवा और उसका संस्कार उनकी कविताओं में सहज ही अभिव्यक्त हुआ है।

अपने काव्य में प्रकृति और नारी सौन्दर्य के प्रशंसक, गिरिजा कुमार अपने अप्रिय अतीत को कभी नहीं भूले। उन्होंने यह स्पष्टत: पाया कि आम आदमी की पीड़ा को करुणा से समझ पाने वाला शायद ही कोई समर्थ व्यक्ति हो। वक्ता को श्रोता, नेता को पिछलगुए, आन्दोलनों को भीड़, भक्तों को धर्म, राज्यों को क्लर्क, कारखानों को मजदूर और मालिकों को गुलामों की कमी न पड़े–वे सदा उपलब्ध रहें–इसलिए यह कोई भी नहीं चाहता कि साधारण जन की स्थिति में वस्तुत: कोई सुधार हो सके। सभी चाहते हैं यह दुनिया बौनों की दुनिया बनी रहे––

> हंस पर आँसू बहाते हैं सिद्धार्थ/सिर्फ इसलिए कि/दया करुणा अक्षुण्ण रहे/घायल रहे सदा/पात्र संवेदना का/खत्म हो न पाये कभी/देवदत्त, सिद्धार्थ/होने की प्रयोजना।
>
> (पृष्ठ 12–13)

उनके अनुसार,

> जनता, भावना, लोकमत/सिर्फ चेहरे हैं/...होती विजय सत्य की/यह पुरानी परिभाषा है/जो विजयी हो जाय/आज वही सत्य है।
>
> (पृष्ठ 18)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दो पाटों की दुनिया में गिरिजा कुमार माथुर भीड़ और अकेलेपन, अविश्वास और आश्वासन, तर्क और मूढ़ता तथा देवता और असुर के क्रम से छूट पाने के लिए आतुर हैं, लेकिन छूट नहीं पाते और न ही यह निर्णय कर पाते हैं कि इनमें से किसे स्वीकार किया जाय। इसीलिए उनके "दो मन साथ-साथ रहते हैं और एक साथ दो बात बोलते ही रहते हैं।" (पृष्ठ 88-89)

> नदियाँ दो-दो अपार/बहती विपरीत छोर/कब तक मैं दोनों धाराओं में साथ बहूं/ओ मेरे सूत्रधार/नौकाएं दो भारी/अलग-अलग दिशाओं में जातीं/कब तक मैं दोनों को एक साथ खेता रहूं.../एक ओर तर्क है/एक ओर संस्कार/दोनों तूफानों का/दुहरा है अंधकार/किसको मैं छोड़ूं/किसको स्वीकार करूं... (पृष्ठ 98-99)

इतना ही नहीं, वे स्वीकार करते हैं कि

> निर्जन दूरियों के/ठोस दर्पणों में/चलते हुए/सहसा मेरी एक देह/तीन देह हो गई/उगकर एक बिंदु पर/तीन अजनबी साथ चलने लगे/अलग-अलग दिशाओं में/और यह न ज्ञात हुआ/इनमें कौन मेरा है। (पृ.41)

गिरिजा कुमार माथुर ने द्वन्द्व और संघर्ष की स्थितियों को भोगा। फिर भी कविता उनके लिए सिर्फ मन के आंतरिक केन्द्र पर घूमने वाला आत्म-मंथन नहीं है, और न ही वह दैहिक स्तर पर अनुभव-भोग का व्यापार है। कविता लिखना उनके अनुसार कवि की विवशता है। जिन्दगी को जितनी अधिक गहराई और विस्तार पूर्ण दृष्टि से देखने पर वह आंदोलित होता है, उतना ही मन से लेकर शरीर के रोम-रोम तक वह अनुभव उसको झंकृत कर देता है। और यही स्थिति उसकी रचनात्मकता को जन्म देती है। बाहर और भीतर की सच्चाई को निःसंगता से व्यक्त करना, उसकी साधना है और वही उसकी सिद्धि है। यह चुनौती है और जोखिम भी।

गिरिजा कुमार माथुर ने इस चुनौती और जोखिम को ताउम्र उठाया। अपनी रचनाधर्मिता के अंतिम पड़ाव में आते-आते उत्तर-आधुनिकता की शुरुआत हो गई थी। उत्तर-आधुनिकता संत्रास और विडम्बना से मुक्त होने की प्रक्रिया है और प्रकृति की तरफ वापसी का नारा है, ताकि समस्त परिवेश और आंतरिक और बाह्य वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सके। उनकी एक कविता 'बीसवाँ अंधकार' में उत्तर-आधुनिकता का यह स्वर स्पष्ट सुना जा सकता है।

10 एच. आई. जी.
1-सर्कुलर रोड, इलाहाबाद (उ.प्र.)-211001

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉ० सरोजिनी अग्रवाल : कहानी

एक पल की देर

मुक्ता के आ जाने से रोहित का जीवन–क्रम ही बदल गया। ऐसा नहीं था कि विवाह से पूर्व वे एक दूसरे को जानते थे और परस्पर जानकारी के उपरान्त ही उन्होंने शादी की थी किन्तु मुक्ता की समझदारी ने घर का वातावरण ही बदल दिया था। बात–बात में अपनी माँ और भाभी पर झुंझलाने वाला रोहित अब तीखी बात को भी मुस्करा कर टाल देता। देर से सोकर उठकर जल्दी–जल्दी तैयार हो बिना नाश्ता किये घर से निकल जाने वाला वह युवक अब सुबह जल्दी उठता था, घर के काम में हाथ बटाता था और हंसता–मुस्कराता नाश्ते की मेज पर सबके बीच उपस्थित रहता था। कभी भाभी चुटकी लेती—"देवर जी, निकल गई सारी तुनुक मिजाजी–बेगम के जादू ने बकरा बना दिया न" तो हंसकर कहता "अरे भाभी जादू तो फिर जादू ही है न–जब तुम्हीं न बच पाई तो अपनी क्या बिसात" और भाभी भी हंसने लगतीं।

मुक्ता की बड़ी–बड़ी आँखों में प्यार का सागर था, पतले–पतले होंठों पर मिश्री की सौगात। वह कुशाग्र बुद्धि तो थी ही व्यवहार कुशल भी थी। कभी कोई गलती भी हो जाती थी तो उसे इस प्रकार से मोड़ दे देती थी कि अगले को बुरा न लगे। मौके को हाथ से न जाने देना ही उसकी सफलता का राज था। भाभी के भुलक्कड़ स्वभाव को उसने इस खूबी से साध लिया था कि कोई अब उनकी भूल पकड़ ही नहीं पाता था। किस समय किसको क्या जरूरत है उसे पता रहता था, वह उसे मिल जाती थी। वह भरे–पूरे परिवार की बेटी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थी और भरेपूरे परिवार में बहू बनकर आई थी— सबका पूरा ख्याल रखना उसका संस्कार था।

रोहित सिविल इन्जीनियर था। सरकारी नौकरी न मिल पाने पर वह सरकार से लोन ले टी० वी० पार्ट्स की एक फैक्टरी लगाने में जुटा था। इस काम में बहुत भाग-दौड़ और मेहनत तो थी ही–धैर्य की भी परीक्षा थी। जमाने की रफ्तार जैसी थी उससे हर जगह जरा से काम के लिए उसे पैसा देना पड़ता—न तब कोई मित्रता काम आती न उसकी योग्यता— वह परेशान हो जाता। एक दिन जब खाना खाकर दोनों लेटे तो उसने मुक्ता से कहा :

"कैसे होगा मुकी ! पैसा तो खत्म होने आया और अभी उत्पादन शुरू भी नहीं हुआ—लोग काम करके ही नहीं देते, हर कदम पर झंझट, हर कदम पर रुकावट—कहीं कुछ कहीं कुछ।"

"निराश होने की बात नहीं–आप जुटे रहिये काम अवश्य होगा। कल से मैं भी आपके साथ चलूंगी" मुक्ता ने जैसे अपना निर्णय दिया।

"तुम-तुम साथ चलोगी–तुम क्या करोगी वहाँ–अरे लोग काम छोड़ तुम्हें ही देखने लग जायेंगे," कहते हुए रोहित हंस दिया।

"माजक नहीं, मैं सच कह रही हूं–मैं चलूंगी" मुक्ता ने दोहराया।

"नहीं-नहीं यह मेरा काम है, मेरा बिजनैस है–तुम घर सम्भालो–जैसे भी होगा इसे मैं सम्हालूंगा।" रोहित थोड़ा रूखा हो चला।

"मेरा तुम्हारा क्या है जी–अब वो जमाना नहीं रहा कि बीवी घर में बैठी बस चूल्हा फूंके। पढ़ी-लिखी बीवी का पढ़ना-लिखना और कहीं काम आ सकता है न, शायद कोई नया रास्ता सूझ जाय। मना क्यों करते हो, क्या डर लगता है कि मैं फिर रोटी नहीं पकाऊंगी"? कहते हुए मुक्ता मुस्करा दी।

"नहीं पगली"–जरा पास सरकते हुए छेड़खानी की। प्यार से बोला–"तुम्हारे इस रूप से डर लगता है।"

"तुम्हें मालूम है न कि मैं ऐसी बेवकूफ नहीं कि कोई मुझे फंसा ले," बत्ती बन्द करते हुए मुक्ता कह उठीं। "जमाना बहुत खराब है मुकी–मुझे बहुत डर लगता है।"

"डरने से क्या जमाना अच्छा हो जायेगा या खराब कहते रहने से उसमें कोई फर्क पड़ेगा। जमाने को देखते हुए उसी के अनुसार दाँव-पेंच से हमें काम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लेना पड़ेगा । जी छोटा न करो, तुम परेशान न हो राजे ! थोड़ा धीरज, थोड़ी सूझबूझ, बस सब ठीक हो जायेगा"–कहते हुए मुक्ता रोहित के बाल सहलाने लगी ।

रोहित भावुक हो उठा—"जरूर हो जायेगा मुकी–माँ कहा करती थीं "ईश्वर पर भरोसा रखो और प्रयत्न में, मेहनत में कोई कसर न रखो–सफलता जरूर मिलेगी"; माँ तो नहीं रहीं पर अब तुम–तुम भी वैसी ही बातें करती हो । तुम्हारा बहुत सहारा है मुझे । कल प्रातः जाऊंगा डायरैक्टर आफ इन्डस्ट्रीज़ से मिलने देखो क्या होता है ?"

"सब ठीक ही होगा–भाभी से कह दूंगी सुबह का काम वे सम्हाल लेंगी रसोई का–मैं भी जल्दी तैयार हो जाऊंगी–ले चलियेगा न मुझे–प्लीज, ले चलना" और बड़े आग्रह से अपने पति की आँखों में देखते हुए वह उससे सट गई । बिना कुछ बोले रोहित ने उसे अपनी बाहों में भर लिया और बत्ती बुझा दी ।

प्रातःकाल रोहित और मुक्ता साढ़े नौ बजे घर से निकल पड़े । उन्हें आफिस तक पहुंचने में 20 मिनट लगे । जैसे ही इनका स्कूटर रुका ऑफिस के मुख्य द्वार से एक फिएट कार अन्दर घुसी । रोहित ने बताया यही डायरेक्टर की गाड़ी है । डायरेक्टर को उतरते हुए मुक्ता ने देखा–लम्बी चौड़ी हृष्ट-पुष्ट काया, चेहरे पर अभिजात शालीनता, चाल में आत्मविश्वास की झलक, पूरे व्यक्तित्व में उसे एक साफ सुथरापन लगा । स्कूटर स्टैंड में खड़ा करके वे दोनो डायरेक्टर के पी. ए. के पास पहुंच गये । पी. ए. बोला, "अभी तो एक जरूरी मीटिंग है–साढ़े ग्यारह बजे भेंट हो सकेगी ।" सुनकर दोनो अलग हट आये । रोहित बड़बड़ाया, "जाने मीटिंग है या लोगों को परेशान कर अपना चाय पानी जुड़ाने का जुगाड़ है इस पी-ए के बच्चे का । जब देखो कहीं कुछ कहीं कुछ–सीधे मिलने ही नहीं देते ।" "क्यों गुस्सा होते हो रोहित–इन लोगों की आदत पड़ गई है–लोग टिकाते जो रहते हैं–चलो इस समय का हम उपयोग कर लें–ये फाइल मुझे दे दो, और जो मैं पूछूं मुझे समझा दो" कहते हुए मुक्ता ने रोहित के हाथ से अपनी फैक्टरी की फाइल ले ली और सामने पड़े सोफे की ओर बढ़ गई ।

लगभग ग्यारह बजे डायरेक्टर साहब के कमरे से कुछ लोग बाहर निकले और पी. ए. ने उन्हें अन्दर जाने की अनुमति दे दी । मुक्ता और रोहित ने कमरे में प्रवेश किया । डायरेक्टर किसी फाइल को पढ़ने में व्यस्त थे । उन्होंने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बिना ऊपर देखे हाथ से बैठने का संकेत किया। मुक्ता और रोहित चुपचाप कुर्सी पर बैठ गये। दो मिनट बाद फाइल बंद करते हुए जैसे ही डायरेक्टर ने अपना सिर उठाया वह चौंक उठे। ऐसा सौंदर्य–यह तो लाखों में एक है। बड़ी आत्मीयता से बोले, "कहिये मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?"

रोहित कुछ बोलता इससे पूर्व मुक्ता शुरू हो गई–"सर! हमने एक टी. वी. पार्ट्स की फैक्टरी लगाई है सारी फार्मेलिटीज पूरी होने के बावजूद भी हमें उत्पादन की परमीशन नहीं मिली है–कई बार आपसे मिलने का समय लेना चाहा पर नहीं मिला। ये हमारी फाइल है। आप देख लीजिये जो कमी हो बतला दें और कृपा करके परमीशन शीघ्र दिलवाने का कष्ट करें।"

डायरेक्टर मिस्टर रिजवी ने हाथ बढ़ाकर फाइल ले ली और चपरासी को चाय लाने का आदेश दिया। फाइल को उलटते वे बोले—

"मिस्टर रोहित टण्डन आपका केस मैंने सरसरी निगाह से तो देख लिया है। आज शाम को और देख लूंगा आप लोग कल आ जाएं–देखता हूं कि क्या किया जा सकता है।"

"कल तो सर! मुझे एक बहुत जरूरी काम से बाहर जाना है।" रोहित की बात बीच में ही काटते हुए रिजवी साहब बोल पड़े—

"आप नहीं आ सकें तो मिसिज टण्डन आ जायेंगी। मैं उन्हें केस के बारे में बता दूंगा, आप परेशान न हों। अच्छा लीजिये चाय पीजिये", चाय का कप मुक्ता की ओर बढ़ाते हुए रिजवी ने आग्रह किया। चाय के साथ कुछ जमाने की, कुछ राजनीति की बातें होती रहीं और टण्डन दम्पती ने नमस्कार के साथ विदा ली।

दूसरे दिन का बाहर जाने का प्रोग्राम रोहित ने बदल दिया; कैसे भी वह मुक्ता को डायरेक्टर के पास अकेले नहीं जाने देना चाहता था। उसने मुक्ता को यही बतलाया कि कार्यक्रम बदल गया है, अब वह भी कल रिजवी के पास चलेगा। अगले दिन लगभग 11 बजे वे रिजवी साहब से मिलने पहुंच गये। पी. ए. ने उनको बड़े सम्मान से बिठाया। थोड़ी देर बाद रोहित ने जब पुनः मिलवाने को कहा तो पी. ए. ने डायरेक्टर साहब को फोन से बतलाया कि मिस्टर एण्ड मिसिज टण्डन को जरा जल्दी है, क्या उन्हें भीतर भेज दें? डायरेक्टर साहब से बात करके उसने फोन रख दिया और पी.ए. रोहित टण्डन से बोला, "साहब अभी आवश्यक मीटिंग में बहुत व्यस्त हैं, मीटिंग लम्बी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चलेगी। उनका कहना है कि शाम को आप उनसे घर पर मिल लें।" रोहित को इससे झुंझलाहट तो हुई पर विवशता थी–क्या करता। "शाम को घर पहुंचेंगे, साहब को बतला देना" कहकर उसने मुक्ता को बाहर चलने का इशारा किया।

शाम को मुक्ता जब तैयार होकर निकली तो रोहित देखता रह गया। उसने फीरोजी रंग का काम्बीनेशन पहना था। गौरवर्ण उन्नत ललाट पर फीरोजी बिंदिया दिप-दिप दमक रही थी और उसे मैच करते कर्णफूल और गले में जड़ाऊ नेकलेस गजब ढा रहे थे। हिरनी जैसी आँखों और पाटल की पंखुरियों जैसे होंठों का स्वाभाविक मेकअप, केश विन्यास, चूड़ियों का चयन शिफॉन की साड़ी में लिपटा उसका मोहक यौवन, चेहरे का तेज सब कुछ जैसे अद्भुत था, किसी को भी अभिमंत्रित कर देने के लिए पर्याप्त। वह आन्दोलित हो उठा। उसका मन हुआ कि अपने इस बेजोड़ हीरे को वह सबकी नजरों से छिपा कर रखे, कहीं न जाय और अपनी ही छत पर चाँदनी रात को उत्सवित करे। वह धीमे से बोला—

"बहुत अच्छी लग रही हो मुकी—आज कहीं नहीं चलते—चाँदनी को एनजॉय करते हैं।"

"भावुक न बनो रोहित। आज जिस काम से हम जा रहे हैं वह बहुत आवश्यक है। फैक्टरी वाला काम यदि नहीं हुआ तो हम बहुत परेशानी में पड़ जायेंगे। पैसा हमारे पास है नहीं, उत्पादन शुरू नहीं हो पा रहा है–कैसे क्या करेंगे हम? ठीक है वहाँ हो आते हैं फिर रात तो अपनी है न," रोहित के बिगड़ते मूड को सम्हालने के लिए थोड़ा मुस्करा कर मुक्ता ने कहा। "ठीक है, जैसी तुम्हारी मर्जी", कहकर रोहित स्कूटर निकालने लगा।

डायरेक्टर रिजवी साहब का घर शहर से बाहर नई बनी आजाद कालोनी में था। पहुंचते-पहुंचते दोनों को लगभग 40 मिनट लग गये। रिजवी साहब घर में थे, बड़ी आत्मीयता से दोनों को उन्होंने अपने ड्राइंग रूम में बिठाया।

"मैंने आपकी फाइल देखी—कुछ कमियाँ हैं, मैंने सम्बन्धित आफिसर से कह दिया है। आप परेशान न हों आपका काम हो जायेगा मि० टण्डन" कहते हुए उनकी नजर मुक्ता के चेहरे पर जैसे चिपक गई। मुक्ता को बड़ा अजीब सा लगा। वह उठने का उपक्रम करते हुए बोली।

"तो हम चलें सर—फिर आप जब कहेंगे ये आफिस पहुंच जायेंगे।"

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

"अरे ऐसे कैसे, आप हमारे घर आई हैं कुछ ठण्डा गरम चलेगा–बोलिये क्या लेंगे आप ? कहने के साथ उन्होंने आवाज़ लगाई, शोफर!"

"हम अभी घर से चाय पीकर आये हैं सर, कुछ नहीं लेंगे–बस इजाजत दीजिये" रोहित उठते हुए बोला। उसी समय शोफर ने कमरे में प्रवेश किया। उसे देखकर रिजवी साहब ने रोहित से कहा—

"एक बात हो सकती है आप अभी पी० सी० वाही के यहाँ चले जायें, मैं एक स्लिप दे रहा हूं वह उन्हें दे दें—वे आपको कुछ कागजात देंगें वे आप लेते आयें। मैं कोशिश करता हूं कि आज ही आपका काम हो जाय तो आपको आना नहीं पड़ेगा। "फिर शोफर की ओर मुड़कर उन्होंने कहा—

"गाड़ी निकाल लो और इन्हें पी० सी० वाही के यहां ले जाओ—एक जरूरी फाइल आनी है—कुछ देर भी लग जाय तो इन्तजार कर लेना—इन्हें साथ लेकर आना—काम जरूरी है।"

रोहित कुछ सोचता उससे पहले ही रिजवी साहब ने कहा—आप बेखटके जाइये; मिसिज टण्डन, आप रुकें आपसे मुझे कुछ डिस्कस करना है। टाइम कम है, जब तक ये कागजात लेकर आते हैं आप मुझे कुछ पाइन्टस क्लीअर कर दीजिये"। और उन्होंने जाने का इशारा किया।

मुक्ता को रिजवी साहब के यहाँ अकेले छोड़कर जाने की रोहित की बिल्कुल इच्छा नहीं थी। उसने मुक्ता की ओर देखा वह कुछ घबराई सी लगी– "मैं ये कागजात कल ले लूंगा सर अभी जरा हमें कहीं जाना था।" उसने बहाना बनाया।

"ओ. के. जैसा आप चाहें। पर मैं कल बाहर जा रहा हूं फिर कब आपकी फाइल निकल पायेगी कह नहीं सकता," बेरुखी से रिजवी साहब बोले।

बनती बात बिगड़ती देख मुक्ता ने बीच में टोक दिया, "रोहित आप चले जाइये कागजात लेने, हमें जहाँ अभी जाना था कल मिल लेंगे; ये काम ज्यादा जरूरी है," और उसने चले जाने के लिए रोहित को आँख से इशारा किया।

"ठीक है मैं अभी लेकर आता हूं सर" कहते हुए रोहित बाहर निकल गया।

"आइये आप इधर मेरे पास आकर बैठिये इस फाइल में ये कुछ निशान मैंने लगाये हैं जरा इन्हें समझाइये कि क्या हैं इनकी डिटेल्स। कहते हुए उन्होंने नौकर को दो गिलास शर्बत लाने को कहा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपरिचित स्थान पर एक अजनबी के साथ यों अकेले बैठना मुक्ता को बहुत अजीब सा लग रहा था पर मजबूरी थी। उसने फाइल उठाई और निशान लगा पैराग्राफ पढ़ने लगी । तभी नौकर शर्बत और नाश्ता लेकर आ गया ।

"इधर टेबल पर रख दो और जाओ–हम कुछ जरूरी काम कर रहे हैं; डिस्टर्ब मत करना–कोई आए तो आफिस में कल मिलने को कह देना समझे" रिजवी ने हिदायत दी ।

"लीजिये पहले शर्बत ले लीजिये फिर काम करते हैं" कहकर उन्होंने गिलास मुक्ता की ओर बढ़ाया ।

रिजवी साहब की बात का अन्दाज और आँखों का भाव मुक्ता को सिहरा गया । उसे महिला के रूप–गुण के प्रभाव का ज्ञान था और रूप के प्रति पुरुष की लोलुपता से भी वह अनभिज्ञ नहीं थी । यदि और कोई मौका होता तो वह तुरन्त बहाना बनाकर चल देती किन्तु यहां उसे काम करवाना था । यह बात रिजवी साहब भी जानते थे और इसी का फायदा वे उठाना चाहते थे । वे कच्चे खिलाड़ी नहीं थे–सौदा और समझौता कब कहाँ होना है कैसे होना है, की जानकारी उन्हें थी । गिलास लिए हुए वे मुक्ता की बगल में आकर बैठ गये और बहुत आग्रहपूर्वक गिलास उन्होंने कुछ इस प्रकार मुक्ता को पकड़ाया कि उसकी अंगुलियों से उनकी अंगुलियाँ टकराईं । उसके सौंदर्य और शृंगार की प्रशंसा करते हुए वे उसके और नजदीक खिसक आये । अचकचाकर मुक्ता दूर हटी तो गिलास का शर्बत रिजवी के कुर्ते पर छलक गया । हड़बड़ा कर उसने रूमाल निकाला और जैसे ही वह उसे पोंछने को झुकी "कोई बात नहीं" कहते हुए उन्होंने मुक्ता की कमर में हाथ डालकर उसे अपने पास बिठा लिया और जब तक वह सम्हले उसके रक्ताभ कपोल पर एक चुम्बन जड़ दिया ।

"क्या करते हैं आप" कहते हुए आवेश से कांपती मुक्ता उठकर खड़ी हो गई ।

"खूबसूरती है ही ऐसी बला जो दिल को काबू में नहीं रहने देती—यह मेरी कमजोरी है । मुक्ता जी, काम तो होता ही रहेगा आइये जरा दो मिनट चैन से जी लें" कहकर रिजवी ने मुक्ता को आगोश में भर लिया और दीवान की ओर बढ़े ।

"भाड़ में गया काम" खतरे को भांपते हुए मुक्ता ने जूडो का एक दांव लगाया और रिजवी की पकड़ से मुक्त हो गई । उसने झपट कर सामने रखी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपनी फाइल उठाई और बिना पीछे देखे दरवाजा खोलकर बाहर की ओर भागी। धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतरकर गेट खोलकर वह सड़क पर भागने लगी।

लगभग 9 बजे रात्रि का समय था। यह कालोनी शहर के बाहरी इलाके में थी। सड़क पर सन्नाटा था। बदहवास सी मुक्ता सड़क पर दौड़ रही थी—दौड़ते-दौड़ते उसकी सांस फूलने लगी। दम लेने के लिए वह जरा रुकी। उसने पीछे मुड़कर देखा कहीं कोई नहीं था। सड़क के दोनों ओर जैसे जंगल था। जो रात में डरावना सा लग रहा था। अगर उसके साथ रोहित होता वह इसे एनजॉय करती पर इस अवस्था में एक दहशत उस पर होने लगी। इस सड़क से भी वह परिचित नहीं थी पर उसे वहाँ से भागना था अतः वह फिर भागने लगी। अचानक सामने से एक गाड़ी आती दिखाई दी। सड़क पर एक युवती को अकेला देख वह गाड़ी रुकी। उसमें से तीन आदमी उतरे। उनकी शकल देखकर मुक्ता सहम गई। उसके कदम रुक गये। उन आदमियों ने चारों ओर देखा किसी और को आस पास न देख वे उसकी ओर बढ़े।

"वाह क्या चीज है लाजवाब" एक आदमी बोला। "बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा है" दूसरे ने कहा। "अरे तीनों मिल बांट के भोग लगायेंगे बड़ा अच्छा शिकार है" तीसरा आदमी हाथ नचाता हुआ फुसफुसाया। जैसे ही वे उसके पास आये शराब की तेज गन्ध से उसका सिर भन्ना गया। एक क्षण के लिए वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गई।

"किससे भाग रही हो डार्लिंग—आओ हमारे पास आओ हम तुम्हारा डर दूर कर दें" एक गंदी हरकत के साथ सामने वाले गुंडे टाइप आदमी ने उसका हाथ पकड़ लिया। मुक्ता आने वाले संकट को भाप गई। 'हे भगवान रक्षा करो' उसने मन ही मन प्रार्थना की और जैसे कोई निर्णय ले लिया।

"अब मेरा डर कौन दूर करेगा- मौत करे तो करे जब घर वालों ने ही निकाल दिया तो गैरों से क्या उम्मीद करूं। कौन करेगा मेरी मदद" कहते हुए वह सिसकने लगी।

"मैं करता हूं तुम्हारी मदद—देखो अभी करता हूं" कहते हुए दूसरे आदमी ने उसका आँचल खींचा।

"ईश्वर आपका भला करे—मैं तो सोचती थी अब मुझे कोई छुयेगा भी नही 'एड्स' बीमारी ही ऐसी है"

"एड्स ! तो तुम्हें एड्स है—अरे बाप रे" कहता हुआ वह आदमी ऐसा पलटा कि जैसे करंट मार गया हो। तेजी से वह गाड़ी की ओर लपका।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

"रुको यार हम भी चलते हैं"—कहते हुए बाकी दोनों बदमाश भी दौड़कर गाड़ी में चढ़ गये। एक क्लिक की आवाज के साथ गाड़ी स्टार्ट हुई और चल दी।

गाड़ी के जरा दूर निकल जाने पर मुक्ता की जान में जान आई। "ओह! ईश्वर तूने कैसी बुद्धि दी—एक पल की देर सारी जिन्दगी को अभिशाप बना देती।" और वह ईश्वर की वन्दना में झुक गई।

'अभिवादन', बाल्दा कालोनी निशातगंज, लखनऊ

सुश्री नील प्रभा भारद्वाज ; लघु कथा

परिन्दों का राज्य

जंगल में सिंह का राज्य था। अतः वह मनमानी करता। अगर कोई बोलने का प्रयास करता तो वह दहाड़ उठता। चुप न रह सका तो एक नन्हा-सा परिन्दा। उसके जो दिल में आता, कह कर उड़ जाता। शेर ने कई बार उसे पंजों में कसने का प्रयास किया परन्तु परिन्दा था कि हर बार पंख फड़फड़ा कर उड़ जाता।

शेर और परिन्दे की यह लुकमिचाई अरसे तक चलती रही। परिन्दे की भाषा बराबर जंगल को सचेत करती रही, फलतः राजा की प्रतिष्ठा को आँच आने लगी। अब राजा ने मौन साध लिया। मंत्री ने राजा को सचेत किया तो राजा बोला, "भाई! जनतन्त्र का जमाना है, सब को बोलने का अधिकार है···फिर मैं तो जनता का प्रतिनिधि हूं। इसलिए परिन्दा जो भी बोलता है वह उसका अधिकार है।"

जंगल राजा की जय-जयकार से गूंज उठा। परिन्दा फिर भी चीखता रहा। राजा चुपचाप सुनता रहा।

एक रात अचानक वृक्ष को आग लग गई और परिन्दे का बसेरा जल गया। उसने दूसरा बसेरा बनाया। राजा मन ही मन मुस्कराया। अबकी सारा जंगल धूँ-धूँ कर उठा। परिन्दा चीख-चीख कर राजा को दोषी ठहराने और उसके अत्याचारों का बखान करता रहा। राजा फिर भी मुस्कराता रहा।

एक रात राजा का भेजा हुआ बहेलिया आया और उसने अपने तीर से परिन्दे को पंखहीन कर डाला। परिन्दा धरती पर गिरा छटपटाता रहा। राजा को सूचना मिली तो वह अपने मंत्रियों सहित भागा आया। परिन्दे की निर्भीकता का गुणगान किया। फिर एक हरे-भरे वृक्ष पर उसका नया बसेरा बनवा दिया। पंखहीन बेबस परिन्दा जलती आँखों से राजा को घूरता रहा। उत्तर में राजा उदास, प्रच्छन्न मुस्कान बिखेरता रहा। जंगल निवासी खुशी से उछल पड़े। राजा की जय-जयकार करते हुए बोले, "राजा हो तो ऐसा।"

परकटा परिन्दा विवश छटपटाता रहा।

56-H ब्लाक, श्री गंगानगर (राजस्थान)-335001

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री आदित्य अग्निहोत्री ; दो कविताएँ

सन्दर्भ : खाड़ी युद्ध

एक

शान से ठाठें लेते
निर्मल झिलमिल
नीले समुद्र पर
प्रति पल पसरती
तेल की डेढ़-मीटर मोटी
पैंसठ किलोमीटर लम्बी
विनाश की यह सघन
काली घिनौनी चादर
किस विराट का
दिव्य दुशाला है ?
ऐ सृष्टि के बनाने-पालने वाले
तेरा असीम ओज-तेज
वेशुमार जाहो-जलाल
उफ किस कदर काला है !
हे सिरजनहार क्षीरशायी,
तेरी सृष्टि में क्यों
विध्वंसक गैसों का ही
बोलबाला है ?
हे रुद्र तेरे तांडव में
क्यों हमेशा
सीधे-सादे निरीह नरनारियों,
मासूम भोले-भाले बच्चों का ही
संहार होता है,
क्यों
महिषासुरों और सुरपतियों के
संग्राम में
मूल्यों के नाम पर
लाशों का ब्योहार होता है ?
ज्ञानी तुझे निर्विकार
कूटस्थ
राग-द्वेष से ऊपर बताते हैं,
ठीक है
तू ऊपर ही रह
हम स्वयं अपने हिसाब चुकायेंगे
मरते मर जायेंगे
तुझे नहीं बुलायेंगे :
दरिन्दों में ही जीना है-रहना है,
रह लेंगे
तुझसे कुछ नहीं कहना है :
हो तब भी
न हो तब भी ।

दो

दूर-दर्शन समाचार

रिपोर्ट में दर्शाये समुद्र में
जहाँ तक नजर जाये
सघन फैले
मोटे, गाढ़े, तारकोली घोल में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिथरे, लथपथ,
निरीह-सहमे
व्यथा-बोझिल जल पक्षियों की
भयाकुल उड़ानें
समुद्र में गहराई तक
चारों ओर पसरे
उस भयावह कालिया के फन पर
असहाय फँसे
पास की चट्टान पर चोंच टिका
लिथरे परों को फड़फड़ाते
मुक्ति के बेचैन प्रयास में
बार-बार असफल हो
पुनः उस घातक घोल में
गिरते-डूबते उस जलपक्षी की
निःशब्द प्राणान्तक पीड़ा
किस सभ्यता की
गौरव गाथा
किस हाईटेक का कमाल,
किस धर्म की
महती उपलब्धि है ?

14 टीचर्स क्वार्टर्स
जय नारायण डिग्री कालेज
स्टेशन रोड, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री वीरेन्द्र मिश्र : एक गीत

एक बूँद टपकी

□

एक आँसू में समुद्र भर गया
एक मोह का नशा उतर गया
ओ मेरी ज़िन्दगी !
ये कैसी परिणति है
बरसों के तप की ।

□

स्वप्न भंग, मृगतृष्णा, तीर्थजल
सबने ही छल किया; दे गरल
ओ मेरी ज़िन्दगी !
जो अनंत निद्रा थी
मैं समझा झपकी ।

□

एक निमिष थी जहाँ नई दिशा
एक निमिष थी जहाँ जिजीविषा
ओ मेरी ज़िन्दगी !
मृत्यु क्यों उसी तरफ
तेजी से लपकी ?

□

डी/116, सरोजिनी नगर
नई दिल्ली-110023

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
श्री नीलेन्द्र : एक कविता

झाड़ियाँ

मौसम के विरुद्ध
लड़ते-लड़ते
उग आते हैं कांटे
होजाती हैं खुरदुरी ये
जनमजली झाड़ियाँ।

घर के चारों ओर
मुस्तैद खड़ी रहती हैं
रक्षा कवच-सी
और हम निश्चित, बस
रखते हैं नजर
इनके कांटों पर।

जब कभी
किसी खुशनुमा
झोंके के साथ
लहराने लगती है
कोई डाल
देने लगती है दस्तक
हमारी खिड़कियों पर
उसकी खरोंच से
भयभीत
काट डालते हैं हम
पूरी डाल।

डालें कटती हैं
और फिर बढ़ती हैं
मौसम के विरुद्ध।

नी नगर
23

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

समय साक्षी है
कर ही जाती हैं प्रवेश
किसी गुप्त द्वार से
एक न एक दिन
ये झाड़ियाँ
अट्टालिकाओं में
हमारे घरों में ।
और बिखरने लगता है
सब कुछ
इनके सामने
भुरभुरी मिट्टी ।
यूं, अपना हिसाब
चुका ही लेती हैं
कभी न कभी
ये जनमजली झाड़ियां ।

द्वारा डॉ वीरेन्द्र सिंह
5-झ-14, जवाहर नगर, जयपुर

श्री सरोज कुमार वर्मा : चन्द लघुकाएँ

ज़िन्दगी

ज़िन्दगी क्या है ?
नमक के पुतले ने छलांग लगाई,
नाप आऊँगा उफनते सागर की अतल गहराई ।
दिन बीता, युग बींते, सदियां बीत गयीं
और वह नहीं लौटा!

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वीकृति

उम्र की दहलीज पै एक दस्तक
और द्वार खोलने का अंतर्द्वन्द ।
धूल के आतंक से बंद दरवाजा
धूप को आने से रोक न लेगा ?
भूल ! गिरने की नहीं
गिरने के भय से नहीं चलने की है :
द्वार खोल ना !
रेतीली हवाओं के साथ/भीनी सुगंध भी होती है ।

शब्द

शब्द जब तक घुल नहीं जाता
मौन के समंदर में
सब तक
सत्य का स्वाद नहीं आता ।
नदी के पार जाने के लिये
इस पार नाव लेना जरूरी है
लेकिन जरूरी है
उस पार नाव को छोड़ देना भी ;
राम-नाम की जय की परिणति
बेखुदी की बेहोश नींद में होती है ।

द्वारा डॉ० शशि भूषण प्रसाद सिन्हा
10, रीडर्स क्वार्टर्स, बिहार विश्वविद्यालय
मुजफ्फरपुर, पिन-842 001

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सुश्री सावित्री शर्मा : एक कविता

कठिन है बहुत ज़िन्दगी का सफर

हमेशा यहाँ साथ किसका रहा ?

अकेले सभी लोग आये-गये
रहे साथ मिल सिर्फ दो-चार दिन
जिये हैं दिनों-दिन बिछड़ मीत से
भरम था न रह पायेंगे एक छिन

अलग बात है दर्द कितना सहा
हमेशा यहाँ साथ किसका रहा ?

हवायें चलें तेज कितनी मगर
नदी दीप से जगमगाते रहे ।
न ठहरो कभी ताल-जल की तरह
लहर-दर-लहर, तुम नदी बन बहो

नहीं धार ने कूल का कर गहा
हमेशा यहाँ साथ किसका रहा ?

सँभल कर चलो डगमगाओ नहीं
कठिन है बहुत जिन्दगी का सफर
खुशी बाँटने पर मिलेगी खुशी
कभी प्यार होता नहीं बेअसर

न सोचो बुरा कुछ किसी ने कहा
हमेशा यहाँ साथ किसका रहा !

सी-10, सेक्टर जे०,
अलीगंज, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जाकिर अली 'रजनीश' ; दो कविताएं

एक : अनोखा प्रेम

शुरू होता है अपना सवेरा
साइकिल की सवारी से
जो मुल्ला की मस्जिद की तरह
पत्र-पत्रिकाओं के
कार्यालयों तक जाती है।
प्रतिदिन यही काम :
रचनाएं लेकर पहुँचना
और सम्पादक की
अभिवादन व खेद सहित की
पर्ची लेकर वापस लौटना।
लोग मेरी कविताओं से ऊबते हैं
पर मैं तो
स्वयं से ही ऊबने लगा हूं,
शायद मेरी किस्मत भी
वजबजा गयी है
बरसाती गलियों की तरह।
कभी-कभी सोचता हूं
क्यों नहीं मैंने भी खरीद ली
'डाक्टरेट' की डिग्री
या किसी
नेता की चमचागीरी
जिससे कम से कम
मेरी रचनाएं तो छप जातीं !

टर जे०,
खनऊ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दो : निष्कर्ष

पनप रहे हैं प्रेम के वृक्ष
आज हर हृदय में
बदल चुकी है आज
प्रेम की परिभाषा ।
जहां कहीं भी नजरें हुईं चार
झट से हो जाता है प्यार !
न जाने कब कहां
किससे प्यार-प्रेम हो जाए
किस-किस से······
कोई कुछ नहीं बता सकता
ज्योतिष भी कुछ कहने की
जुर्रत नहीं कर सकता ।
आज 'हाय!' बोल कर परिचय
कल हाथ मिलाएं
परसों बाहों तक आएं
फिर नरसों···राम जाने या खुदा
पर, उससे अगले दिन
अताउल्लाह के गाने !
सच ये दुनिया
बहुत तरक्की कर रही है !

नौशाद मंजिल, सुभाष नगर
तेलीबाग बाजार, लखनऊ-2

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉ० हृदय नारायण मिश्र : निबन्ध

समसामयिक भारतीय मानववादी चिन्तक व चिन्तन

[इस शोधपूर्ण तथा समीक्षात्मक आलेख में प्रस्तुत लेखक के मानववाद पर विशेष विमर्शपरक टिप्पणी है, इसलिए उसे 'युगसाक्षी' में प्रकाशित करने के सवाल को लेकर मन में हिचक थी; उसमें मेरे दृष्टिकोण की समीक्षा भी है, और अन्य उपयोगी सामग्री भी, इसलिए यहाँ छापना अनुचित नहीं लगा। अपनी मान्यताओं के मण्डन के रूप में मुझे दो बातें कहनी हैं। एक यह कि दर्शन में कोई मन्तव्य मनोनुकूल अथवा प्रिय होने मात्र से ग्राह्य नहीं हो जाता—वहाँ ज्यादा अहमियत उपयुक्त साक्ष्य की होती है। दूसरे, डॉ० मिश्र ने सर्जनात्मक मानववाद की दो मान्यताओं पर उचित ध्यान नहीं दिया है : उसकी वैकल्पिक आख्या 'गुणात्मक मानववाद' भी है। मनुष्य सक्षम अस्तिभाव के साथ अपने गुणात्मक उत्कर्ष के लिए भी प्रयत्नशील रहता है; तथाकथित अध्यात्मचर्या उक्त प्रयत्न व साधना का अंग है। मानववाद की यह मान्यता कि मोक्ष नाम की परिणति किसी इतर सत्ता (ईश्वर?) की मोहताज नहीं है, अद्वैत वेदांत और बौद्ध-सांख्य मतों के निकट है ; हमारी अभिमत मुक्ति जीवन्मुक्ति है।—प्र० संपादक]

पृष्ठभूमि : किसी ने ठीक ही कहा है कि मानववाद या मानवतावाद और कुछ नहीं 'एक दार्शनिक मिजाज है'। इसे एक रुझान कह सकते हैं, जो अनेक विचार पद्धतियों में प्रकट की गयी है : जैसे फलवाद (प्रैगमेटिज्म) में, अस्तित्ववाद में तथा मार्क्सवाद में। इन सब विचार-धाराओं का केन्द्र-बिन्दु मानव ही है। वैसे सामान्य रुप से मानववादी विचारधारा नवीन होते हुए भी प्राचीन है। यूनान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की विचारधारा में ई० पू० ५ वीं शताब्दी में प्रोटागोरस को मानववादी विचारक माना जा सकता है ; क्योंकि उन्होंने कहा था कि 'मनुष्य सब वस्तुओं का मानदण्ड है' । सुकरात को भी मानववादी विचारक कह सकते हैं, क्योंकि उन्होंने मनुष्य को 'अपने आपको जानो' का संदेश देकर यह सिद्ध कर दिया था कि मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है । प्रकृतिवाद तथा भौतिकवाद भी मनुष्य को सर्वोपरि स्थान देता है । इन विचारधाराओं के विचारक यद्यपि ईश्वर, आत्मा जैसी सत्ता को स्वीकार नहीं करते, परन्तु मनुष्य के हित की बात करते हैं । अनीश्वरवादी मत का पोषण करने वाला बौद्धमत भी मानववादी कहा जा सकता है; उसके अनुसार मनुष्य का अस्तित्व इतर-निरपेक्ष व स्वतन्त्र है; उसे अपने प्रयत्न द्वारा दुःखों से छुटकारा पाना है। मनुष्य अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण रखकर अपना उद्धार स्वतः कर सकता है । इसी तरह कन्फ्यूसियस का निकाय तथा ताओवाद भी मानववाद के समर्थक हैं । समकालीन दार्शनिकों में बर्ट्रेन्ड रसेल मानववाद के समर्थक हैं । चूंकि रसेल किसी अप्राकृतिक या अतिप्राकृतिक सत्ता को स्वीकार नहीं करते अतः उन्हें प्रकृतिवादी की संज्ञा दी जा सकती है । फलवाद (प्रेग्मेटिज्म) के विचारक जॉन डयूई तथा शिलर मानववादी माने जाते हैं । अस्तित्ववाद के समर्थकों में सार्त्र मानववाद के प्रमुख समर्थक माने गये हैं। इनका मानववाद ईश्वर की सत्ता को बिना स्वीकार किये ही मनुष्य की स्वतन्त्रता, उसकी गरिमा, महत्ता तथा उत्तरदायित्व को महत्व देता है। अमरीकी दर्शन में मानववादी विचारधारा के एक बड़े समर्थक कार्लिस लेमांट हैं। इनका मानववाद भौतिकवाद तथा अनीश्वरवाद दोनों को सम्मिलित करता है। उनकी पुस्तक "द फिलॉसफी ऑफ ह्यूमेनिज्म" इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। इनके मानववाद को कई नामों से अभिहित किया जाता है : वैज्ञानिक मानववाद, धर्मनिरपेक्ष मानववाद, प्रकृतिवादी मानववाद । उसे प्रजातान्त्रिक मानववाद भी कहा जाता है ।

भारतीय चिन्तक : पाश्चात्य परम्परा का प्रभाव ग्रहण करते हुए कुछ आधुनिक भारतीय चिन्तकों ने भी मानववाद का प्रतिपादन किया है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आधुनिक भारतीय मानववादी चिन्तकों के दो वर्ग हैं–एक भारतीय चिन्तन धारा को साथ लेते हुए, परन्तु पाश्चात्य विचारों से उद्वेलित होकर मानववाद की स्थापना करता है या मानववादी विचार व्यक्त करता है । इसके अन्तर्गत रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महात्मा गांधी, श्री अरविन्द तथा डा० राधाकृष्णन् और कुछ अन्य अति-आधुनिक चिन्तक हैं। दूसरा वर्ग वह है जो केवल मानववादी धारणा को ही अभिव्यक्त नहीं करता वरन् पाश्चात्य मानववादी सिद्धान्त और विचारधारा को अपने चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु बनाता है और मानववाद को सिद्धान्त के रुप में ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि उसे धर्म के विकल्प के रूप में स्वीकार करने और स्वीकार कराने का आग्रह करता है। यह वर्ग पाश्चात्य मानववादी चिन्तकों के चिन्तन को उधार के रुप में लेता है। इस वर्ग के विचारकों में सर्वप्रथम मानवेन्द्र नाथ राय का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने दर्शन को 'नव मानववाद' या 'वैज्ञानिक मानववाद' या 'अविकल मानववाद' कहा है। अपने 'नव मानववाद' को उन्होंने समाज-दर्शन के रूप में स्थापित किया है। इस वर्ग में दूसरा स्थान पं० जवाहर लाल नेहरू का है। राय से अधिकांश रूप में प्रभावित होते हुए इन्होंने वैज्ञानिक मानववाद का समर्थन किया है। 'मेरी कहानी' में स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा है, "मेरे संस्कार शायद एक हद तक अब भी उन्नीसवीं सदी के हैं और मानववाद की उदार परम्परा का मुझ पर इतना ज्यादा प्रभाव है कि मैं उससे बचकर बिल्कुल निकल नहीं सकता।" (पृष्ठ 822) नेहरू पाश्चात्य चिन्तकों की तरह यह धारणा व्यक्त करते हैं कि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग मानवता की वृद्धि के लिए करना चाहिए। परन्तु यह बहुत स्पष्ट रुप से नहीं कहा जा सकता कि वे लेमॉन्ट तथा राय की तरह पूर्णतया प्रकृतिवादी व अनीश्वरवादी हैं या नहीं। इतना तो बहुत ही स्पष्ट है कि नेहरू मानवता के सच्चे पुजारी थे। उनका पंचशील का सिद्धान्त, विश्व शान्ति का प्रचार तथा धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त मानववाद के कवच हैं। इसी के अन्तर्गत 'भारतीय मानववादी संघ' की भी चर्चा आवश्यक है। पं० नेहरू के समय में ही इस संघ की स्थापना बड़े ही उत्साहपूर्वक की गयी। आज से ४० वर्ष पहले १९५४ में इलाहाबाद में 'अविश्वासियों' अथवा 'स्वतन्त्र चिन्तकों' का एक समूह, जिसके नेता श्री नरसिंह नारायण ने (तथा उनके साथी अब्दुल जमील खाँ, श्याम कुमारी खाँ, प्रो० श्याम नारायण तथा प्रकाश नारायण ने) 'स्वतन्त्र चिन्तन की प्रोन्नति के लिए संघ' बनाया। तब तक इन लोगों को यह पता नहीं था कि 'अन्तर्राष्ट्रीय नैतिक मानववादी आन्दोलन' अस्तित्व में आ चुके हैं। सर्वप्रथम इसको इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ० पी० ई० दस्तूर द्वारा 'अमरीकन नैतिक संघ' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय मानववादी तथा नैतिक संघ' (IHEU) के, जिसका प्रधान कार्यालय उट्रेक्ट

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(UTRECHT) हॉलैण्ड में था, विषय में जानकारी मिली। इस बीच इस संस्था से उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ तथा 'धर्म' के सम्बन्ध में इनके विचार उससे मिलते-जुलते लगे। श्री नरसिंह नारायण ने 1957 में लन्दन में व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में भारत की ओर से 'अन्तर्राष्ट्रीय मानववादी तथा नैतिक संघ' की सभा में जाकर संघ के अनेक नेताओं से सम्बन्ध स्थापित किया। भारत में आकर श्री नरसिंह नारायण ने 1960 में 'भारतीय मानववादी संघ' की स्थापना की और इसका प्रधान कार्यालय नैनीताल में और इसकी शाखा लखनऊ में खोली गयी। 1972 में इस संस्था को IHEU से एक सह-सदस्य के रूप में सम्बद्ध किया गया। इस प्रकार इन 12 वर्षों में (1960–1972) श्री नर सिंह नारायण ने प्रचुरता से भारतीय तथा विदेशी पत्रिकाओं में मानववाद पर बहुत कुछ लिखा; वे देश-विदेश घूमते रहे और प्रवचन तथा विश्लेषण में लगे रहे। इतना ही नहीं 'ह्यूमेनिस्ट आउटलुक' एक त्रैमासिक जर्नल का प्रकाशन भी किया और उसके प्रथम सम्पादक हुए। दूसरा प्रकाशन 'दी सेक्युलेरिस्ट' है। इसका सम्बन्ध 'इन्डियन सेक्युलर सोसाइटी' से है, जिसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। इन शोध पत्रिकाओं के अतिरिक्त एक 'ह्यूमेनिस्ट एनडाउमेन्ट फन्ड सोसायटी' की भी स्थापना की गयी है। इतना सब कुछ करने के बाद 'भारतीय मानववादी संघ' के संस्थापक की अगस्त 1972 में मृत्यु हो गयी। इनके सम्बन्ध में मैरी मोरन (U.S.A.) ने ठीक कहा है कि 'वह मानववाद के क्षेत्र में विशिष्ट और उपयोगी ढलान हैं'। ब्लेखेम (U. K.) ने कहा कि 'उन्होंने अपनी शान्ति को नष्ट किया परन्तु मानववाद के क्षेत्र में विशिष्ट और अपनी अलग पहचान बनाने वाले सिद्ध हुए।'

आज भारत में अनेक अनीश्वरवादी समूह हैं– जैसे भारतीय मानववादी संघ, भारतीय धर्मनिरपेक्ष संघ, और अविफल (उग्र) मानववादी संघ, (रेडिकल ह्यूमेनिस्ट सोसायटी) आदि। श्री नरसिंह नारायण का सम्बन्ध इन सबसे रहा है और इन संघों को उन्होंने अपने चिन्तन से पूरित किया है। यहाँ आवश्यक है कि उनके मानववादी दृष्टिकोण को संक्षेप में देख लिया जाय।

1, श्री नरसिंह नारायण के मानववाद को 'व्यवहार वादी मानववाद' कहा जा सकता है, क्योंकि वे इसे सर्वसाधारण मानव से जोड़ना चाहते थे। उसके अनुसार "हम इस पर जोर देना चाहते हैं कि मानववाद केवल बौद्धिक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभिजन के लिए ही नही वरन् सर्वसाधारण के लिए हैं। इसका आधार सर्वसाधारण दृष्टि है न कि विज्ञान या दर्शन।"

2. मानववाय के लिए तत्वमीमांसीय आधार की आवश्यकता नहीं हैं। बौद्धिक अनुशासन के रूप में हम दर्शन के मूल्य से इनकार नहीं करते। हम जीवन के प्रति मनोवृत्ति से भी इनकार नहीं करते (परन्तु वस्तु यथार्थ के अन्तिम स्वरूप के विषय में किसी सिद्धान्त के आग्रही नही) क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ जीवन–दृष्टि या दर्शन रखता है। हम विज्ञान की शक्ति को भी महत्व देते हैं। विज्ञान का अवदान भी एक मूल्य के रूप में आंका जाना चाहिए।

3. नैतिकता का आधार मूल प्रवृत्यात्मक और सांवेगिक है। इसको जड़ें प्रेम और मित्रता के स्थायी भाव में निहित हैं। इसी से हम मनुष्य और यहाँ तक कि इतर जीवों से भी जुड़े हैं। नैतिक आदर्शों के विषय में समस्या यह नहीं है कि वे समझने में कठिन हैं। समस्या यह है कि उनको जीवन में जीना कठिन है। दार्शनिक और ईश्वरवादी सिद्धान्तों से यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। रचनात्मक दृष्टि से नैतिक प्रयत्नों में धार्मिक पुस्तकें और सिद्धान्त बाधक सोते है। इस प्रकार पारम्परिक धर्मों से लड़ाई हमारा लक्ष्य है, क्योंकि इनसे हमारे नैतिक प्रयत्न बाधित होते है। मानववाद नैतिकता के लिए किसी बाह्य आदेश को स्वीकार नहीं करता।

4. मानववाद ईश्वर के अस्तित्व या अनस्तित्व से सम्बन्धित किसी विचार से सम्बन्ध रखने के लिए प्रतिबद्ध नहीं है। परन्तु मानववाद के लिए यह स्वीकार्य नहीं है कि वह किसी व्यक्ति को ईश्वर का अवतार, पैगम्बर या अदृश्य मार्ग–दर्शक माने अथवा किसी पुस्तक को दैवी प्रकाशन और मार्ग दर्शक के रूप में माने।

5. मानववाद मृत्यु के परे के जीवन में विश्वास नहीं करता। इसे मोक्ष का लक्ष्य स्वीकार नहीं है। यह इस संसार पर अपना ध्यान रखता है और इसी से सन्तुष्ट है। यह जीवन के सभी सम्बन्धों और क्षेत्रों में नैतिक मूल्यों के संरक्षण और बृद्धिकरण से सम्बन्ध रखती है। मानववाद मानव–समाज के सुखी और श्रेष्ठ जीवन के निर्माण में लगा रहना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

6. मानववाद दो आधार भूत मूल्यों को स्वीकार करता है--प्रथम राष्ट्रीयता, जाति और धर्म से आधार पर बिना भेद–भाव के मानव जाति की एकता और मैत्री सम्बन्धों में प्रेम तथा दूसरा बौद्धिक एकात्मकता तथा वैज्ञानिक दृष्टि, जिसके आधार पर सभी विश्वास चाहे वे कितने दृढ़ हों भविष्य में प्राप्त अनुभव और ज्ञान के आलोक में, उनका परिवर्धन किया जा सके या उनकी अस्वीकृति की जा सके।

7. मानववाद व्यक्ति का विकास चाहता है और सामाजिक सम्बन्धों में उसकी सहभागिता को अविभाज्य, स्वतन्त्र तथा उत्तरदायित्व पूर्ण देखना चाहता है। इसका उद्देश्य उन सम्बन्धों का पूर्ण विकास करना है जिनसे पूण रूप से मानवीय मैत्री सम्बन्ध, आपसी समझ तथा मानवीय सर्जनात्मक शक्ति का विकास हो।

8. मानववाद नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त ऐसे किसी रहस्यात्मक, धार्मिक या आध्यात्मिक अनुभव से प्रतिबद्ध नहीं है। परन्तु इव अनुभवों से यदि व्यक्तित्व का विकास या आत्मानुशासन में वृद्धि होती है तो वह मूल्य के रूप में स्वीकार्य है। यह आध्यात्मिक अनुभव की उपलब्धि को जीवन का परम लक्ष्य नहीं मानता। मानववाव यह चाहता है कि मनुष्य को अपने धर्म का निश्चय उसके जन्म के आधार पर या उसके प्रारम्भिक जीवन में दी गयी दीक्षा–शिक्षा से न हो। वरन् मानव अपने धर्म का चुनाव आयु के परिपक्व होने के पश्चात् करें।[1]

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि श्री नरसिंह नारायण का मानववाद लेमॉन्ट तथा एम० एन० राय के मानववाद से इस अर्थ में भिन्न है कि वे दोनो प्रकृतिवादी तत्वशास्त्र में आस्था रखते हैं, पनन्तु श्री नरसिंह नारायण किसी भी प्रकार के तत्वशास्त्र को बिना माने ही मानववाद की स्थापना करते हैं। यदि लेमॉन्ट का मानववाद प्रकृतिवादी या जनतान्त्रिक या धर्म निरपेक्षवादी हैं और राय का मानववाद अविकल या 'नव मानववाद' है तो नरसिंह नारायण का मानववाद जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, व्यवहारवादी (प्रेग्मेटिक) है, जिसे उन्होंने सर्वसाधारण की दृष्टि का मानववाद कहा हैं, परन्तु उनके अनुयायियों

1–ह्यूमेनिस्ट आउटलुक, Vol, 3, No. 9, August 1974, पृ० 242-247, लेख, लेखक नरसिंह नारायण सिंह।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का दार्शनिक विवेचन,' (सर्जनात्मक मानववाद की भूमिका, द्वि० सं० 1972) 2. 'फ्रीडम, क्रिएटिविटी एण्ड वैल्यू' (ए ह्यूमेनिस्ट व्यू, ऑफ मैन एण्ड हिज वर्ल्ड; 1988) 3. 'ह्यूमेनिज्म इन् इण्डियन थाट' (1988), अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जहाँ विभिन्न मानववादी चिन्तकों के दृष्टिकोण को विशिष्ट नामों तथा विशेषताओं से पहचाना जाता है, वहीं देवराज का मानववाद 'सर्जनात्मक मानववाद' के नाम से लोगों को आकर्षित करता है। यहाँ संक्षेप में इनके सृजनात्मक या सर्जनात्मक मानववाद पर दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा।

1. डॉ० देवराज के अनुसार, 'सृजनात्मक मानववाद एक मानव केन्द्रित दर्शन हैं। इसकी दृष्टि में मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सृजनशीलता है। वैसे तो प्रोटेगोरस के इस कथन के कि 'मनुष्य ही सब चीजों का मापदण्ड हैं' साथ-साथ अन्य मानववादी चिन्तकों ने भी मानव को ही अपने अध्ययन का केन्द्र-बिन्दू माना है, परन्तु डॉ० देवराज ने अपने मानववादी दर्शन को मानव केन्द्रित इस लिए कहा है कि दार्शनिक चिन्तन का वास्तविक विषय स्वयं मनुष्य है, अर्थात् **वह मनुष्य जो मूल्यों का वाहक और स्रष्टा है।**

'मानव केन्द्रित' कहने का दूसरा कारण यह है कि "इस जीवन दर्शन में परलोक और पारलौकिक शक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं है"। हम मनुष्य से ऊँची किसी सत्ता में विश्वास नहीं रखते। यहां द्रष्टव्य है कि इनका मानववाद इस अर्थ में एक ओर अनीश्वरवादी 'भारतीय मानववादी संघ' के विचारकों से एकमत रखता है और दूसरी ओर पाश्चात्य अनीश्वरवादी विचारकों जैसे कार्लिस लेमान्ट, जेम्स, सार्त्र आदि से भी साम्य रखता है। एम० एन० राय और पं० नेहरू जो पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर मानववाद की स्थापना करते हैं, और अनीश्वरवाद को अपना मूल केन्द्रबिन्दु बनाते हैं, उनसे भी इनका साम्य देखा जा सकता है।

2. इनके मानववाद की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें लेमान्ट एवं एम० एन० राय के विपरीत प्रकृतिवादी तत्वशास्त्र को स्थान नहीं हैं। प्रकृतिवाद को स्थान न देने का कारण बताते हुए डॉ० देवराज स्वयं कहते हैं! क्योंकि हम मानते हैं कि मनुष्य का अध्ययन उसे प्रकृति का अंग मानकर नहीं किया जा सकता। अधिकांश विचारक जो परलोक को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नहीं मानते, अपने को प्रकृतिवादी कहते हैं; प्रकृतिवाद और भौतिकवाद लगभग पर्यायवाची शब्द हैं। सृजनात्मक मानववाद का किसी भी कोटि के प्रकृतिवाद अथवा भौतिकवाद से कोई लगाव नहीं है।''[1]

श्री नरसिंह नारायण ने भी लेमॉन्ट और एम. एन. राय के विपरीत यह घोषणा की है कि हमारे मानववाद में किसी भी प्रकार के तत्वशास्त्र को स्थान नहीं है। डॉ० देवराज ने यह तो कहा कि हमारे मानववाद का प्रकृतिवाद और भौतिकवाद से कोई लगाव नहीं है, परन्तु उन्होंने स्पष्टतः यह नहीं कहा कि किस प्रकार के तत्वशास्त्र से सृजनात्मक मानववाद का संबंध है। यह हमें निर्धारित करना है कि देवराज प्रकृतिवादी हैं या और कुछ। इतना स्पष्ट है कि वे परलोकवादी या ईश्वरवादी नहीं हैं।

3. डॉ० देवराज का दावा है कि उनका सृजनात्मक मानववाद धर्म लिरोधी नहीं है। सामान्य रूप से भारतीय परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक अनूभूति का सम्बन्ध अधिकांशतः ईश्वर, आत्मा या ब्रह्म के साक्षात्कार से समझा जाता है, परन्तु डॉ० देवराज इसे 'कल्पना' कहते हैं और उचित भी नहीं मानते, क्योंकि उनके अनुसार यह स्थिति मानवीय अनुभूति से परे समझी जाती है। परन्तु उनके मत में जिसे आध्यात्मिक अनुभूति अहते हैं वह मानवीय अनुभव में ही निहित है। उन्हीं के शब्दों में उसकी कुछ विशेषताएं इस प्रकार है''—

(1) चूंकि यह अनुभूनि मानवीय अनुभूति होती है, और इस लिए वह न तो उस अनुभूति की परिधि का अतिक्रमण ही करती है, और (2) न अ–वुद्धिगम्य ही होती है। (8) आध्यात्मिक अनुभुति का तत्व दो चीजों में निहित होता है: प्रथम नश्वर पदार्थों तथा मूल्यों के प्रति वैराग्य भावना में तथा दूसरा जीवन की अनन्त सार्थकता या मूल्य में।[2]

इस सन्दर्भ में यहां 'भारतीय मानवयादी संघ' के जनक श्री नरसिंह नारायण के आध्यात्मिकता–विषयक दृष्टिकोण को देख लेना अप्रासँगिक नहीं होगा। अपने संघ के स्मारक पत्र (मेमोरेंडम) में उनका कहना हैं कि मानवीय मूल्य कई प्रकार के होते हैं—भौतिक मूल्य, बौद्धिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य-परन्तु संघ के अनुसार केवल नैतिक मूल्य को ही

1–संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 11
2–वहीं पृ० 92

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सन्दर्भित किया गया है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य मूल्यों के अस्तित्व से इनकार है। इसका सीधा अर्थ यह है कि हमारा सम्बन्ध सीधे नैतिक मूल्यों से है, अन्य मूल्यों से नहीं। कुछ मानववादी आध्यात्मिक मूल्यों और आवश्यकताओं के विषय में बात करते हैं, परन्तु कुछ दूसरे लोग 'आध्यात्मिक' शब्द को पसन्द नहीं करते। आध्यात्मिक मूल्य की अवधारणा में भी विभेद है अतः इस विवाद में पड़ने की अपेक्षा वे नैतिक मूल्य को ही महत्व देते हैं; जो आध्यात्मिक मूल्यों से स्वतन्त्र है।[1] डॉ० देवराज का श्री नरसिंह नारायण से इस अर्थ में मतभेद है, क्योंकि उन्होंने अपने 'सृजनात्मक मानववाद' को आध्यात्मिक अर्थ में लिया है और इसी को धार्मिक भी कहा है। उनके शब्दों में "सृजनात्मक मानववाद धर्म विरोधी नहीं है। हमारे मत में धर्म या अध्यात्म की स्थिति मानवीय अनुभव में ही है।" इस प्रकार डॉ० देवराज अपने संघ के स्मारक पत्र के विपरीत या विरुद्ध अध्यात्म से अनुप्राणित जीवन को महत्त्व देते हैं ओर अपने ग्रंथों में उसकी सार्थकता को प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। वे लेमॉंट के भौतिकवादी मानववाद की आलोचना करते हैं तथा उसे धर्म विरोधी बताते हैं। वे एक सच्चे भौतिकवादी मानववाद को स्वीकार करने वाले लेमान्ट के इस कथन के कि "मनुष्य को अपना व्यक्तित्व चारों ओर से विकसित करना चाहिए।······मनुष्य को इस धरती के जीवन में अधिकतम रस लेना चाहिए तथा उसका उपभोग करने का प्रयत्न करना चाहिए" विरोध में कहते हैं कि लेमॉन्ट ने जिस प्रकार के जीवनोपभोग की सिफारिश की है, उसमें हलकेपन का आभास होता है। लेमॉन्ट के जीवन-दर्शन में उस चीज़ के लिए कोई स्थान दिखलाई नहीं देता जिसे फ्रेंच विचारक जॉक मारितॉने 'वीरोचित जीवन की कामना' कहा है और जिसे वह मानव-प्रकृति की निसर्ग-सिद्ध कामना मानते हैं। पुन उनका विचार है "मनुष्य की सार्थकता इसमें है कि वह ऐसी चीजों की चेतना प्राप्त करे जिनका उसकी जरुरतों से दूर का सम्बन्ध भी नहीं है, और इस प्रकार जरुरतों के क्षेत्र का अतिक्रमण करके अपने को विश्व की निरुपयोगी छवियों से सम्बद्ध असंख्य जीवन-संभावनाओं में उत्क्षिप्त करे।" जहाँ लेमान्ट प्रकृति और मनुष्य के द्वैत को मिथ्या मानते हैं वहाँ सृजनात्मक मानववाद इस द्वैत को अन्वेषण-सम्बन्धी आवश्यक मान्यता के रूप में स्वीकार करता है। इस प्रकार डॉ० देवराज मनुष्य को अध्यात्मवादी स्वीकार करते हैं। यद्यपि श्री नरसिंह नारायण

1—ह्यूमेनिस्ट आउटलुक Vol. 3 No 9 अगस्त 1974, पृ० 246

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
"आध्यात्मिक मूल्य या आध्यात्मिक आवश्यकता" शब्द से 'जड़' और 'चेतन सत्ता' का द्वैत स्वीकार नहीं करते, अथवा इससे किसी तत्वशास्त्रीय या धार्मिक स्थिति को भी मान्यता नहीं देते, परन्तु डॉ० देवराज निश्चित रूप से 'आध्यात्मिकता' का सही निहितार्थ लेते हैं। वैसे सच्चे मानववाद के अर्थ में उन्हें श्री नरसिंह नारायण की तरह अध्यात्म से कोई लगाव नहीं रखना चाहिए और यदि लगाव रखते हैं तो उन्हें टैगोर, गाँधी या डॉ० राधाकृष्णन् की तरह मानववादी दृष्टिकोण रखना चाहिए और उन्हीं की तरह 'परमसत्ता', 'ईश्वरीय सत्ता', या चेतन सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। परन्तु वे दोनो प्रकार की मानववादी दृष्टियों का पल्ला पकड़े रहना चाहते हैं। यह स्थिति ठीक नहीं है। अपनी स्थापना की दृष्टि से तो लेमॉन्ट और नरसिंह नारायण का मत इसलिए ठीक हैं, क्योंकि उनकी स्थिति डांवाडोल नहीं है। यदि डॉ० देवराज बौद्धों की स्थिति स्वीकार करते हैं तब भी उन्हें किसी चेतन सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। महायान के विकसित दर्शन और धर्म की व्याख्या बाद में भारतीय दार्शनिकों ने जिस प्रकार की है वह सत्ताहीन नहीं हैं। डॉ० देवराज ने 'बोधिसत्व' की धारणा तो सहज रूप में स्वीकार किया है, फिर कर्म और पुनर्जन्म की धारणा स्वीकार करने में उनको क्या आपत्ति है? बौद्ध धर्म के केवल नैतिक उपदेश ही उसके मानववाद का आधार हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

नारायण कालोनी, ज्ञानपुर (वाराणसी)

युगसाक्षी (त्रैमासिक पत्रिका)

पंजीयन संख्या	46219/86
प्रकाशक-मुद्रक-संपादक	एन्. के. देवराज
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	52, बादशाह नगर, लखनऊ-7
मुद्रण-स्थान	नेशनल आर्ट प्रेस, 207, न्यू हैदराबाद, लखनऊ-7
प्रकाशन-स्थान	52, बादशाह नगर, लखनऊ-7

(संपादक मंडल पूर्णतः अवैतनिक है)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रो० रमा सिंह : समीक्षा लेख

ध्रुवान्तर—नारी चेतना की नयी प्रस्तुति

'ध्रुवान्तर' खण्ड काव्य लब्ध प्रतिष्ठ कविवर रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की नयी कृति है। कवि ने इस कृति में महाभारत के स्वर्गारोहण–प्रसंग को एक नई वैचारिक चेतना–भूमि पर रचा है। इस प्रबंध–काव्य की कथा है – स्वर्गारोहण। महाभारत के इस प्रसंग को लेकर अंचल जी ने अपने गंभीर मनोवैज्ञानिक चिन्तन द्वारा एक नई विचारणा दी है, ऐसी विचारणा जो आधुनिक संदर्भ मे प्रासंगिक और अर्थवान है। 'ध्रुवान्तर' के भूमिका लेखक डा० विद्यानिवास मिश्र के अनुसार 'ध्रुवान्तर' वस्तुतः नारी चेतना का काव्य है। ध्रुवान्तर में युधिष्ठिर ध्रुव नहीं रहे, ध्रुव हो गई है द्रौपदी।' इसका कथानक तो पुराना है पर उसके चरित्रों का निर्माण एक नये धरातल पर हुआ है। एक सफल रचनाकर्मी ऐसी प्रस्तुति को नये समाज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक बना देता है। वर्तमान परिवेश में नारी–संबंधी चिन्तन और विश्लेषण ने अनेक नये आयामों का स्पर्श किया है। अंचल जी ने इसी युगीन समस्या को अपने पात्रों द्वारा उद्घाटित किया है। इस काव्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र है – द्रौपदी। पाँच पतियों को वरण करना जिसकी नियति बना, वह द्रौपदी नियति के व्यंग की चर्चा इस तरह करती है —

"भले प्रेमार्थिनी मैं लक्ष्यभेदी वर विजेता की
न उसने प्राण–परिप्लावित प्रणय मेरा कभी जाना,
उलूपी, रूपसी चित्रांगदा, हरिता सुभद्रा–सी
रमणियों में रमे मन ने न मेरा प्रेम पहचाना।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हृदय कर मुग्ध मन मेरा रहा [illegible] आशा।
तरसता रह गया एकोन्मुखी अविरत प्रणय प्यासा,
वही सब कब मिला मेरे प्रणत सर्वाङ्ग अर्चन को
अपूरित रह गई मेरी तृषा से दग्ध अभिलाषा।"

द्रौपदी के मन को कचोटने वाली कई स्थितियाँ हैं. पाँच-पाँच पतियों के प्रति समर्पित होने वाली पत्नी की संवेदना तो है ही साथ ही राज-सभा में दुःशासन द्वारा वस्त्र खींचे जाने की लज्जापूर्ण और कुत्सित घटना तथा पतियों का मूक बना रहना भी उसके जीवन की व्यगपूर्ण स्थिति है। अपनी सुरक्षा के वाहक पतियों का मौन रहना और फिर अपने भाई सरीखे कृष्ण से करुणा की पुकार करना . . . यह दृश्य सामाजिक विसंगति और नारी के प्रति अत्याचार का एक ऐसा दृश्य है जिसका समाधान समाज को खोजना होगा। द्रौपदी की इस कातर वाणी और इस असह्य वेदना को अंचल जी ने बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है। द्रौपदी कहती है —

"रहे सब देखते यह नारकी अपमान नारी का
बधिर, कातर, प्रसू की स्तन्य-वत्सल कुक्षि विस्मृत कर
कहाँ थे जह्नु, पुरु, कुरु आर्य, भूप प्रतीप शान्तनु सब
कहाँ था दिग्विजय से दीप्त वह राजन्य रत्नाकर ?
करो रक्षा बचाओ लाज इस असहाय अबला की
जिसे भगिनीत्व-गौरवयुक्त दी तुमने अमर गरिमा,
शिरोच्छेदन करो मतिमूढ़ शिष्टों का, नृशंसों का
कहाँ सोई तुम्हारे चक्र की ज्वालामुखी महिमा।"

द्रौपदी के मन के ये सारे भाव अतीत की स्मृतियों के रूप में उस समय उभरते हैं जब पांडव द्रौपदी के साथ स्वर्गारोहण के लिए निकल पड़ते हैं। पूरा का पूरा काव्य इसी स्मृति-परक शैली में लिखा गया है।

'ध्रुवान्तर' के दस खण्ड हैं और इनके नाम अधिकांशतः महाभारत के प्रमुख पात्रों के नाम पर हैं ये वे पात्र हैं जो युद्ध की विभीषिका के बाद द्रौपदी और उसके पाँचों पति के देह-त्याग की घटना से संबंधित हैं। ये पात्र हैं — द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर। इसके अतिरिक्त आरंभ में पूर्वा और आरोहण खंड में परिवेश और स्वर्गारोहण की पृष्ठभूमि दी गई है। अंत के दो खंड हैं — अश्वत्थामा और गांधारी। 'अश्वत्थामा' खंड

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और 'गांधारी' खंड में कवि ने शीर्षक में एक पंक्ति और देकर जैसे इन खण्डों की सार्थकता रेखांकित की है, ये शीर्षक हैं – 'मैं मिथक नहीं, अभिशाप · ·' और इस तरह एक मिथकीय प्रसंग को नये युग की दृष्टि से नया और आधुनिक अर्थ प्रदान किया गया है।

अंतिम खण्ड है : गांधारी। शीर्ष पंक्ति वही है — 'मैं मिथक नहीं अभिशाप'। गांधारी की जीवन-कथा भी नियति की एक ऐसी प्रवंचना है, जो उसके मन को निरंतर मथती रहती है। ऊपरी ताम-झाम के आदर्शों को ओढ़ते हुए वह आजीवन आँखों पर पट्टी बाँधे रही, और पातिव्रत-धर्म की अनुपालिक बनी रही पर मन की व्यथा कुछ और ही है। मन की व्यथा के ये बारीक पर्त अंचल जी ने बड़ी प्रखरता के साथ खोले हैं। गांधारी कहती है—

> मैं मिथक नहीं, अभिशाप,मूर्त नारी हूं
> पातिव्रत की आदर्श रूढ़ि अपना कर,
> अंधे नृप के हाथों विक जन्मद द्वारा
> राज्ञी का पद पाया था गजपुर आकर।

आगे चलकर वह कहती है —

> गांधार शैल-प्रान्तर सब दिन को छूटे
> जन्मान्ध राजभोगी की बनी पिपासा,
> दृढ़ बंधे नेत्र दो मैंने कभी न खोले
> जीवन का सर्वभूल सुख कभी न भासा
>
> X X
>
> मैं मूकमना, भूपतिता, वातहता–सी
> f f छिन्न लता सी रही वासना सहती,
> पति के सारे पातक-छल-बल की स्वीकृति
> कुं ित अंगों का दंशन किससे कहती।

गांधारी अपने पातिव्रत के आवरण में व्यक्ति न रहकर वस्तु बन जाती है, धृतराष्ट्र के हर पातकी निर्णय को मौन–स्वीकृति प्रदान करती चली जाती है, प्रतिकार करने की शक्ति उसमें है ही नहीं · · पर इस स्थिति पर जब वह अपनी कुंठा इन शब्दों में व्यक्त करती है तो नारी-जीवन का व्यंग खुलकर सामने आता है। उसकी अभिव्यक्ति एक एक ऐसी सामाजिक विसंगति का चित्र खींचती है, जिसका समाधान आज के युग को खोजना है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्रौपदी और गांधारी इन दो काव्य-खण्डों में नारी की मूक-व्यथा को इस तरह चित्रित किया गया है कि वे चित्र हमारी आँखों को तो नम करते ही है साथ ही नारी स्थिति की ज्वलंत समस्या का समाधान ढूंढने के लिए हमें विवश कर देते हैं। इस विचार प्रधान कृति के लिए अंचल जी बधाई और साधुवाद के पात्र हैं। पुस्तक का नाम : ध्रुवान्तर, लेखक, रामेश्वर शुक्ल अंचल; प्रकाशक : भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ (उ० प्र०)

बी–1098, इन्दिरा नगर, लखनऊ

कविता को आज न नितांत निजी, व्यक्तिगत चीज माना जा सकता है, न किसी मत या धारणा में बन्द। व्यक्ति वृत्त से बाहर न आ पाने वाली और मतवाद तक सीमित रह जाने वाली कविता हल्की-फुल्की उत्तेजनाएं पैदा कर सकती है, किसी गहरी संवेदना और विचार का नहीं जगा सकती। ऐसी कविता एक तरह के पूर्वाग्रह, कभी-की दुराग्रह से शुरू होती है और उसी से चिपके-चिपके खत्म हो जाती है। यह पूर्वाग्रह-दुराग्रह कभी भाववादी किस्म का होता है और कभी सिद्धांतवादी किस्म का। कुछ मित्र इस पूर्वाग्रह-दुराग्रह को, भ्रम से विचार मान लेते हैं। वे भूल जाते हैं कि विचार जीवन में से आते हैं और सक्रिय हिस्सेदारी को व्यक्त करते हैं। उनका मतवाद से कतई कोई संबंध नहीं है।

हम जानते हैं कि व्यक्तिवादी और मतवादी कविता का हश्र अक्सर उत्तेजना और वक्तव्यबाजी मे होता है। हुआ है जो कुछ अच्छी-भली कविता को भी ले डूबती है।

'डॉ० नरेन्द्र मोहन'
'समकालीन
कविता के बारे में'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉ० प्रभा सक्सेना : समीक्षा-लेख

कब तक (कहानी संग्रह), लेखिका कमलेश बक्षी

ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित कमलेश बक्षी का कथा संग्रह 'कब तक' 19 नारी जीवन की मार्मिक त्रासदियों, टूटते रिश्तों के मोह भंग कर देने वाले करुण प्रसंगों, आज के परिवेश में हर पल जीते मनुष्य के आकांक्षा जगत और फिर कहीं बहुत सूक्ष्म स्तर पर जड़ता से जूझने और स्थितियों को बदलने के तीखे तेवर के साथ, पाठकों को उद्वेलित करता हुआ, यथार्थ की कटुता को अपनी पूर्ण भयावहता में प्रस्तुत करता है।

'बैसाखियाँ या मोतियाबिन्द' संग्रह की सर्वाधिक मार्मिक कहानी है। यथार्थ की विकट मजबूरियाँ, बच्चों की सीमित संकुचित हितों वाली आत्म-केन्द्रित विद्रूप दृष्टि और माँ बाप का टूटता हुआ स्वप्न संसार ··· जो बच्चे माँ बाप के आँख के तारे बनते, वे ही मोतियाबिन्द बन गये। स्वयं माँ बाप की बैसाखियाँ बनने की बजाय रंजन और मोहन माँ बाप को बैसाखियों की तरह काम में लेने लगे। बँटवारा संपत्ति का ही नहीं वरन् माँ बाप का भी, क्योंकि कोई एक अकेला दोनों का भार नहीं उठा सकता। ब्रजभूषण इस बँटवारे को गहन दर्द में डूबे हुए रोकते हैं और बच्चों से अलग किराये के मकान में रहने का फैसला करते हैं।

यह कहानी माँ बाप के पुत्रों के साथ परम्परागत गहन संवेदनात्मक रिश्तों के विरुद्ध आधुनिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में कटु यथार्थ का चित्र उपस्थित करती है। बुढ़ापे के मोतियाबिन्द पुत्र हैं, जिनके कारण ही कुछ दिखाई नहीं देता। यह स्वीकारोक्ति संवेदनात्मक जगत को उस भव्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
मानसिकता के छद्मजाल से मुक्त करती हैं जिसमें माँ–बाप अपने जीवन की सार्थकता सिर्फ पुत्रोत्पत्ति में मानते हैं। ब्रजभूषण का बुढ़ापे में पत्नी को लेकर अलग रहने का निर्णय निश्चित रूप से आधुनिक जीवन में फट रही त्रासदी को अत्यन्त विस्फोटक रूप में प्रस्तुत करता है।

पर 'भाभी' और 'फिर लौटूंगा' कहानियों में मातृत्व को अत्यधिक महिमान्वित करके आंका गया है। 'भाभी' में तो स्थितियों की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई कड़वाहट भी कहीं विद्रोह की सुगबुगाहट मन में नहीं जगा पाती। जैसे माँ होने बाद नारी मनुष्य नहीं रह जाती। मनुष्य होने के राग-द्वेष, क्रोध सबसे परे हो जाती है। जीवन की वास्तविकताएँ बहुत अधिक निर्मम होती हैं। उनके विश्लेषण में लेखिका को अधिक यथार्थपरक दृष्टिकोण यहाँ भी अपनाना चाहिए था।

पर जिन कहानियों में लेखिका ने यथार्थ पर अपनी पकड़ बनाये रखी है उनमें स्थितियाँ मन को गहरे में छूती हैं। 'दीवार में चिनी ईंट' की स्वप्ना करुणा जनक मानवीय संवेदना तो जगाती है जो भाभी के शोषण के विरुद्ध छटपटाती रहती है पर अन्तत. विवशता भरा दीवार में चुनी गई ईंट जैसा लाचार जीवन ही सामने आता है। यहाँ यथार्थ की अच्छी पकड़ है और नारी को हर रिश्ते में शोषण की चक्की में पिसता हुआ दिखाया गया है।

यह शोषण आर्थिक ही नहीं वरन् स्त्री पुरुष के यौन संबंधों में भी दिखाई देता है। इस दृष्टि से 'टूटा हुआ फूलदान' कहानी को देखा जा सकता है। कहानी में मालिनी घर वालों की इच्छा के विरुद्ध आधुनिक दृष्टि का खोल चढ़ाये हुए, बिना विवाह किये हुए जेम्स के साथ लंदन चली जाती है। तीन वर्ष तक जेम्स और मालिनी बिना विवाह किये पति पत्नी की तरह रहते हैं। अब मालिनी जेम्स पर विवाह के लिए दबाव भी डालती है, पर जेम्स टालता रहता है। अचानक माँ के बुलावे पर भारत आकर जेम्स माँ द्वारा निर्धारित लड़की से विवाह कर लेता है। वह मालिनी को विवाह की सूचना देना तक आवश्यक नहीं समझता। जेम्स के विवाह की सूचना, जेम्स का मित्र अहमद नासिर मालिनी को देता है। मालिनी पर इसकी बड़ी तीखी प्रतिक्रिया होती है। वह शीघ्र ही अहमद नासिर से विवाह कर लेती है। उसके दो बच्चे भी हो जाते हैं फारुख और हसींना। पर अहमद नासिर बहुत अधिक विलासी था, उसे नित्य नई लड़की चाहिए थी और वह उसकी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व्यवस्था भी कर लेता था। इन सब स्थितियों से तंग आकर मालिनी सागर के किनारे आत्म हत्या करने पहुँच जाती है किन्तु महिला चिकित्सक डॉ सिंघानिया उसे बचा लेती हैं। वे उसे पुनः जीवन जीने की प्रेरणा भी देती हैं। अपने वायदे के अनुसार डॉ सिंघानियाँ फारुख को बाइस वर्ष का होने पर मालिनी के पास भिजवा देती हैं। इस तरह माँ बेटे का मिलन होता है और एक 'टूटा हुआ फूलदान' फिर जुड़ जाता है।

इस कहानी में विजातीय विवाह के बाद आने वाली मन स्थितियों की विपरीतता, मानसिक दृष्टि से सामंजस्य न हो पाने का विश्लेषण कथा को व्यापक आधार दे सकता था, जो कि इस कहानी में नहीं है। कहानी महिला के पुरुष मात्र के प्रति आक्रोश को व्यक्त करती है और अंत में नर्स के रूप में सेवा भावना में डूबी हुई मालिनी के चरित्र को बड़ी भव्यता के साथ अंकित करती है। पर अकेले जीवन में आने वाले संवेदनात्मक उतार चढ़ाव के विभिन्न पहलुओं का कहानी में कोई अता पता नहीं है।

विजातीय विवाह की दृष्टि से एक और महत्वपूर्ण कहानी इस संग्रह में है — 'अनाम संबंध' कहानी की नायिका सुषमा स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने वाले खान साहब के भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित थी। खान साहब की उम्र 45 और उसकी बीस वर्ष थी। अंग्रेजों की गोलियों से बचने के लिए खेतों में छिपते हुए वे अनायास सर्दी के बचने के प्रयास में एक दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। बाद में सुषमा उनसे विवाह कर लेती है। इधर भारत आजाद हो जाता है। अब खान साहब अपने अनुभवों पर एक फिल्म बनाना चाहते हैं। यहीं से उनके जीवन में विलासिता आरम्भ होती है। शराब के नशे में धुत्त उन्हें कोई न कोई घर पटक जाता है। बाद में उन्हें पक्षाघात भी हो गया था। वे निर्जीव से आँखें फाड़े बिस्तर पर पड़े रहते थे।

सलीम जो कि खान साहब का बड़ा बेटा था, उसे सुषमा के जीवन से सहानुभूति होती है। बहन भाइयों का विवाह करने के बाद – वह सुषमा से संबंध स्थापित कर उसी घर में पति की तरह रहने लगता है। तो यह जो सलीम और सुषमा का अनाम समाज द्वारा अस्वीकृत संबंध है — उसमें जीवन के द्वन्द्वों का, हर पल जीते मरते संवेदन का, खान साहब और सुषमा के उम्र के अत्यधिक अन्तर का, जातीय आक्रोश और तनाओं के संकेत का जैसा स्कोप इस कहानी में था, उसके किसी अंश को यहाँ नहीं छुआ गया है। सिर्फ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मायूसी और उदासी में जीवन का वह छलछलाता वेग जिसे सुषमा ने सलीम के साथ जिया है, वह भी कहीं नहीं दीखता। यह ठहराव भी कहानी में अखरता है।

असल में नारी की समस्या उसके जीवनाकाश के बहुत अधिक छोटे होने की है और इस बिंदु को 'तुम भी जाओगे' की सत्ती के माध्यम से उठाया गया है। सत्ती भाई पति व पुत्रों द्वारा उपेक्षित एक ऐसी वात्सल्यमयी माँ है जो ममत्व के प्रति निरन्तर उपेक्षा व आघात के कारण अपना संतुलन खोकर विक्षिप्त हो जाती है। पर विक्षिप्ता में भी अपने ही गैरेज के सामने आकर एकाकी मृत्यु को प्राप्त करती है। यह वह नारी है जिसका आकाश मकान जितना है। जीवन जीने का कोई व्यापक आधार न होने के कारण ही उसका संतुलन बिगड़ता है और वह एकाकी मृत्यु को प्राप्त होती है। यहाँ समस्या पर लेखिका की मजबूत पकड़ दिखाई देती है और वह समझ लेती है कि रंजी की लड़ाई काफी लंबी है। संभवत. इसीलिए 'निर्मुक्त' की निहारिका को जब यह समझ में आता है कि पति देवेश की निगाह उस पर नहीं बल्कि उसकी स्थाई आय पर है तो वह तलाक के कागजों पर हस्ताक्षर कर देती है और एक व्यापक मूल्य व समय के तहत जीने लगती है। वह मूल्य उसे एक बड़े लेखक की पंक्ति में मिलता है — "मनुष्य को अपनी मुक्ति स्वयं खोजनी पड़ती है। अपना महत्व स्वयं जताना पड़ता है और अपना भविष्य स्वयं बनाना पड़ता है।"

पर भविष्य निर्माण की यह लड़ाई लंबी है। 'लंबी लड़ाई' की अनाम नायिका इस बात को पूरी तरह समझ लेती है। वह अविवाहित रह कर नई पीढ़ी के निर्माण के लिए अपना जीवन समर्पित कर देती है और भारतीय दर्शन को आत्मसात् करते हुए कहती है — "प्रयत्न करना मनुष्य का कर्तव्य है, फल का मैंने कभी न सोचा न सोचूंगी।"

इसी तरह 'कब तक' में प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच झूलते हुए मन की तरंगों को प्रो० नीलेश चंदानी के माध्यम से प्रकट किया गया है। बार-बार घर से, जिम्मेदारी से मुक्त होना चाह कर भी, बार-बार घर की ओर लौटना और फिर उसी माया मोह में रम जाना, जिसमें पत्नी ममता रमी है। फिर अचानक ममता के स्वर्गवास के कारण स्थाई रूप से घर की जिम्मेदारियों को ओढ़ लेना, ममत्व में धँसने की मजबूरी और मुक्ति के लिए छटपटाते मन की आतुरता और चढ़ती उतरती तरंगें कहानी को विशेष आकर्षण प्रदान करती हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

"शव जो अरथी से नहीं बँधे" मे भी संवेदना के सूक्ष्मतम स्तरों की गहरी पकड़ दिखाई देती है। महानगर में एक कमरे में परिवार के साथ रहने के कारण दाम्पत्य संबंधों में तनाव की प्रतीति, एकान्त की आकांक्षा, जीने के क्रम में नित्य मरते रहने का एहसास बहुत सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। 'किसी का स्पंदनहीन हो जाना मृत्यु है। केवल तन तक ही लोग क्यों सोचते हैं। उसका मन ··· उमंग ··· आशाएँ ··· प्रेम की आकांक्षा ··· सभी तो मर चुके हैं। फर्क इतना है उनकी अरथी नहीं उठी ··· जुलूस नहीं निकला, कोई चीखा नहीं ··· उसने अपने तन पर उगी कब्रों को टटोलना चाहा।

कहना चाहूंगी 'कब तक' कहानियों में आज के युगीन संदर्भों में कटु विषम परिस्थितियों में, मन के आशा, उत्साह और उमंगों के भी मर जाने, मूल्य विहीनता के पनपने और शरीर के कब्रगाह में बदल जाने का अच्छा चित्रण हुआ है। भाषा की भी अच्छी पकड़ लेखिका के पास है पर जीवन को और अधिक वृहत संदर्भों में देखने जोड़ने की आवश्यकता भी महसूस होती है। कुल मिलाकर महिला लेखन में 'कब तक' की कहानियाँ एक उपलब्धि ही मानी जायेंगी। कब तक : प्रकाशक ज्ञान भारती 4/14 रूप नगर, दिल्ली-7 (1989) मूल्य : 30.00

प्लाट नं० 51; क्लार्क होटल के सामने
मालवीय नगर, जयपुर-17

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉ० धनंजय वर्मा : एक पत्र-प्रतिक्रिया

काव्य-आस्वाद : मनोवृत्ति और सांस्कृतिक दृष्टि

[डॉ० धनंजय वर्मा प्रगतिवादी शिविर के चन्द महत्वपूर्ण समीक्षकों में गिने जाते हैं। भोपाल में वे पढ़ने-लिखने में कुछ अधिक व्यस्त रहने के कारण बदनाम हैं। वे पश्चिमी साहित्य और अलोचना से भी अच्छा परिचय रखते हैं। इस दृष्टि से वे डॉ० नामवर सिंह के समान धर्मा और समकक्ष हैं—सिर्फ यह कि वे उनकी भाषण पटुता और उससे सहचरित 'डिप्लोमेटिक' मनोवृत्ति से वंचित और अछूते हैं। वे अपने समीक्षा कर्म में अपेक्षाकृत अधिक उदार भी हैं। आधुनिकता पर चिंतन करती तीन जिल्दों में प्रकाशित उनकी महत्वपूर्ण कृति विशेष प्रशसित हुई है। उसके दूसरे भाग में अज्ञेय-काव्य पर महत्वपूर्ण अध्याय है — यद्यपि तीसरी, 'समावेशी आधुनिकता' में उनका परम्परित प्रगतिवादी रुझान छिपा नहीं रह सका है। · · · जहाँ तक उनके कालिदास के पद्य पर हमसे मतभेद प्रकट करने का सवाल है, हमें कहना है कि 'अनाघ्रात' पद से विशेषित होने के बावजूद पुष्प शब्द आकर्षक चाक्षुष बिम्ब और स्पर्श-कोमल होने के अनुषंगों का भी वाहक बना रहता है और इस प्रकार संश्लिष्ट भावबोध जगाता है। —संपादक]

आदरणीय देवराज जी,

'युगसाक्षी' का जनवरी--मार्च १६६४ अंक मिला, धन्यवाद। विचार बिन्दु में "काव्य-सृष्टि : स्तर-निर्वाह और आयाम-संक्रमण" पढ़ा। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में शकुन्तला के सौन्दर्य की उपमाओं- "आनाघ्रातं पुष्पं, किसलयमलूनं कररुहैः अनाविद्धं रत्नं, मधु नवमनास्वादितरसम्, अखण्डं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं"—के प्रसंग में आपने लिखा है कि "अनाघ्रातं पुष्पं के आगे की उपमायें सम्भवतः कथित प्रभाव को बढ़ाने वाली नहीं बन सकीं हैं।"···मैं समझता हूं कि कालिदास ने यहां भी पूरी तरह स्तर-निर्वाह किया है और दरअसल जिसे आपने आयाम-संक्रमण कहा है, वह यहां भी विद्यमान है। सौन्दर्य के चाक्षुष साक्षात्कार और उसके बखान में अन्तर तो होगा ही। सौन्दर्य का साक्षात्कार आप ब-यक-वक्त समग्रता में करते हैं लेकिन उसके बखान में एक क्रम आ जाता है। इसलिए उपमानों में प्रभाव-बिम्बों का एक क्रम है। शकुन्तला के सौन्दर्य की अकृत्रिमता, जिसे आपने प्रकृति-प्रसूत कहा है, इन उपमाओं से व्यंजित है और उनमें भी आप गौर करें, ऐन्द्रिय-बोध का क्रमशः आयामों की ओर संक्रमण है। गंध से स्पर्श, स्पर्श से रूप, रूप से रस की ओर संक्रमित होती हुई काव्य-संवेदना उच्चतर धरातल-अखण्ड पुण्यानां फलमिव···तक जाती है।

इसी प्रसंग में आपने डॉ० नामवर सिंह के साथ बातचीत का हवाला देते हुए उन्हें लगभग उद्धृत किया है : "यहाँ कामुक मनोवृत्ति वाला दुष्यन्त यह संकेत कर रहा है कि शकुन्तला का यौवन सर्वथा अभुक्त है" और यह भी कि "अनाविद्ध रत्न से यहाँ तात्पर्य है—अक्षत योनि।" मुझे उनकी यह टिप्पणी दिलचस्प लगी। मैंने पं सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित और अनूदित कालिदास ग्रंथावली देखी। उसमें पूरे पद्य के अर्थ की शुरुआत यों हुई है—'मेरी समझ में तो उसका रूप वैसा ही पवित्र है जैसा कि···आदि-आदि।' पं० चतुर्वेदी के अनुवाद में उपमाओं से पवित्रता की व्यंजना है लेकिन नामवर जी की टिप्पणी में एक खास बात है : 'कामुक मनोवृत्ति वाला दुष्यन्त' और उनकी बात एकदम सही है — कामुक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए अनाविद्ध रत्न का तात्पर्य अक्षत योनि ही होगा। ··· लेकिन पूरे प्रसंग की बात तो छोड़िए, मेरी तो जिज्ञासा आप से भी है कि पूरे पद्य की अर्थच्छवियों को समग्रता में देखा-परखा और पढ़ा-गुना जाय तो क्या दुष्यन्त की मनोवृत्ति वाकई कामुक सिद्ध हो रही है? ···लेखक की तो मृत्यु हो चुकी, पात्र दुष्यन्त ही अब कहां है? हमारे लिये तो यह पद्य–रचना ही साक्ष्य है (सन्दर्भ–रोलाँ बार्थ की डेथ आफ आथर') और यहाँ मैं फिर आपकी ही बात को रेखांकित करना चाहता हूं कि "पाठक कवि के अभिप्रेत को स्वयं अपनी सांस्कृतिक दृष्टि के तहत व्याख्यायित कर सकता है।" और हमारी मनोवृत्ति और सांस्कृतिक दृष्टि के बीच क्या कोई रिश्ता नहीं होता?··· बकौल किसी शायर–'हर ज़र्फ के मयकश हैं, हर क़ैफ की सहबा है।'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एक बार एक विश्वविद्यालय के एक भाषाविद् प्रोफेसर ने एक अविवाहित महिला का जिक्र करते हुए उनके लिए 'कुमारी' शब्द के अंग्रेजी पर्याय 'वर्जिन' का प्रयोग किया। वे 'मिस' और 'वर्जिन' को समानार्थी मान रहे थे।···मैंने किंचित् आश्चर्य से पूछा — क्या वाकई ? ··· उन्होंने जोर देकर कहा — हाँ, भई हाँ ···!··· मैंने उनसे सवाल कर ही दिया — वे 'वर्जिन' हैं, यह आपको कैसे मालूम ?···

बहरहाल, आपके इस विचार-बिन्दु से पर्याप्त काव्य शास्त्र–विनोद तो हुआ ही, उससे गम्भीर आलोचना कर्म की उत्तेजना भी प्राप्त की जा सकती है।···

पुनश्च : 'वर्जिनिटि' और अनाविद्ध एक ही कुल-गोत्र के शब्द जरूर हैं लेकिन प्रथम में 'वर्जिन मेरी' और 'मेडोना' के सम्बन्ध से पवित्र और निष्कलंक, शुचिता और सादगी की अर्थच्छवियाँ आ गयी हैं।

एम–433 ई–7, अरेरा कालोनी, भोपाल–16

पुस्तक–समीक्षा

कई बरस के बाद—कवयित्री डा० मधुरिमा सिंह, प्रकाशक : पदमा प्रकाशन, 1993 ई०, ४/४ अधिकारी आवास, सिविल लाइन्स, सिद्धार्थ नगर –272206 (उ० प्र०); मूल्य 75.00। प्रस्तुत संग्रह सुश्री मधुरिमा सिंह का दूसरा काव्य संकलन है जो उर्दू गजल की विधा में लिखा गया है। इधर हिन्दी में गजल काव्य का विशेष चलन हुआ है, इसका गूढ़ कारण गजल काव्य के सहज चमत्कार का सम्मोहन जान पड़ता है। रीतिकाल में कवित्त और सवैया के छन्दों की लोकप्रियता का यही रहस्य था। इस तरह की कविता कवि–सम्मेलनों या मुशायरों के मंच पर विशेष सफल होती है। इधर नवोदित अनेक हिन्दी कवि ग़ज़ल लिख रहे हैं, उनमें सफल होने वाले नाम कितने हैं, यह अलग बात है। निश्चित ही मधुरिमा सिंह को इस विधा में विशेष सफलता मिली है जो साधारणतः प्रत्याशित नहीं होती। यदि कहा जाय कि दुष्यंत कुमार के बाद ग़ज़ल–लेखन में इतनी सफलता किसी दूसरे हिन्दी कवि को शायद ही मिली हो जितनी डॉ० मधुरिमा सिंह को, तो अत्युक्ति न होगी। उनकी सफलता का एक मुख्य कारण है उर्दू की प्रचलित पदावली के साथ हिन्दी के सरल, घरेलू किस्म के शब्दों व शब्द–संयोजनों का गटबन्धन। संकलित गजलों के चमत्कार और आकर्षण का दूसरा कारण है कवयित्री की संवेदना का परिचित,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नारी-सुलभ घरेलू रूप। इस दूसरी विशेषता का ग़ज़ल के मुहावरे में अनुवाद और उसका उर्दू गज़ल के अन्दाज से संयोजन इस संग्रह को विशेष महत्वपूर्ण बनाते हैं। यह विशेषतायें पाठक को पहली ग़ज़ल से ही दिख पड़ने लगती है—

फिर यादों का मौसम आया, कई बरस के बाद।
जाने क्यों दर्पण शरमाया, कई बरस के बाद।
मीठी मीठी खुशबूवाली साँसें आती हैं,
बगिया ने महुआ टपकाया, कई बरस के बाद।

आम की चटनी, धुली दाल औ रोटी गरम-गरम,
अम्माँ ने चूल्हा सुलगाया, कई बरस के बाद।

पहली गजल का सहज आकर्षण आगे बढ़ता ही गया है जो पाठक को कदम-कदम पर सम्मोहित व चमत्कृत करता हैं, उर्दू की श्रेष्ठ ग़ज़लों की भाँति। कुछ शेर शुरू के पृष्ठों पर और प्राक्कथनों में उद्धृत किये गये हैं—

आया जो तेरा गाँव तो, उतरा नहीं गया,
पैरों में फँस के रह गई, डोरी रक़ाब की।
मैं जान लूँगी साधना स्वीकार हो गयी,
जब उनकी आँख में मेरा चेहरा दिखाई दे।

ज़िन्दगी के हर वरक़ पर हर ग़ज़ल तुझ पर लिखी,
और क्या लिक्खेगा कोई मुझसे दीवाने के बाद।

नहीं इसका डर कि दुनिया मेरा दर्द जान लेगी,
मेरा गीत गाने वाले तेरे होंठ जल न जाएँ।

दो चार शेर और देखें—

आप ही चाहें तो अपना लें मुझे,
मेरा चाहा तो कभी होता नहीं।

मेरे घर–गाँव की नज़रों में शिकायत होगी
ढूँढने आप मुझे जब भी उधर जायेंगे।
बिखरा बिखरा है मेरा छंद मेरी साँसों-सा,
छू ले होंठों से मेरे गीत सँवर जायेंगे।
यों तो सोचा था तेरे पास नहीं जाना है,
तुझको देखा तो लगा और किधर जायेंगे।

—तत्वदर्शी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पत्रिका–साहित्य

सहज कविता—यह एक रोचक त्रैमासिक पत्रिका शुरू की गयी है जिसका उद्देश्य 'सहज कविता' का प्रचार है। पत्रिका के शुरू में डॉ० सुधेश का सम्पादकीय है जिसमें 'सहज–कविता' की वकालत के साथ-साथ उसके स्वरूप को समझाने की कोशिश है। डॉ० सुधेश ने विगत दशकों की कविता को असंतोषजनक पाया और घोषित किया है क्योंकि वहाँ 'मात्र शब्द प्रयोग, वाक् वैचित्र्य, नग्न यथार्थ की व्यंजना, वैचारिकता को ही कविता की संज्ञा देने की प्रवृत्ति मिलती है।' डॉ० सुधेश की एक मुख्य शिकायत यह है कि विगत कविता में 'सामान्य जन हाशिये पर है,' कि उसके बीच मुख्य रूप में मध्य वर्ग ही प्रतिष्ठित है। इस बारे में हमारा निवेदन है कि अपने देश में मध्य वर्ग के, खास कर निम्न मध्य वर्ग के, सदस्य भी कविता बहुत कम पढ़ते हैं। इनसे निम्नतर वर्गों के लोग तो शायद कुछ भी नहीं पढ़ते। सुधेश जी की इस शिकायत से हम सहमत हैं कि इधर की मुक्त छंदी कविता में लय, तुकांत आदि का अभाव उसे चमत्कार शून्य बना देता है, पर इसका प्रतिकार पुराने छन्दों का पुनः प्रचार है, इसमें संदेह किया जा सकता है। कविता में चमत्कार आवश्यक है, बुद्धिजीवी पाठक उससे स्तरीयता की मांग भी करते हैं। अंक में चयन की गयीं कवितायें साधारण कोटि की हैं। चमत्कार की दृष्टि से ग़ज़ल विधा में लिखी गयीं श्री वेद प्रकाश अमिताभ, पूर्णिमा पूनम, दिविक रमेश की रचनायें सुन्दर हैं। श्री अमिताभ का गीत स्तरीयता की दृष्टि से संतोषप्रद नहीं बन सका है, यही बात अगले, श्री गोपीनाथ उपाध्याय के गीत में खलती है। यों उक्त दोनो गीत सहज कविता के अच्छे उदाहरण हैं। दोनों का स्वर प्रगतिवादी भी है।

काव्या—उक्त पत्रिका वर्ष में चार बार प्रकाशित होती है। प्रस्तुत अंक की संख्या बारह (1994) है इस अंक में बम्बई के कवियों की समकालीन कविताएं संकलित की गयी हैं। इधर के पाठकों के लिए संकलित कवियों के नाम प्रायः कम परिचित या अपरिचित हैं। कवितायें मुक्त छंद के आधुनिक मुहावरे में रचित हैं। प्रत्येक कवि की एक से अधिक कविताएं दी गयी हैं। इन कवियों में से प्रत्येक को अपना अलग व्यक्तित्व बनाने और प्रतिष्ठित करने के लिए लंबी साधना अपेक्षित होगी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हमें देखना है कि आत्मनिर्भरता व सामाजिक हैसियत में महिलाओं को बराबर का हिस्सा मिले

- बचत की प्रवृत्ति, आत्मविश्वास और आर्थिक आत्मनिर्भरता लाने के लिए 'महिला समृद्धि योजना' का कार्यान्वयन।
- पंचायती राज संस्थाओं के 30 प्रतिशत पद महिलाओं को देने का ऐतिहासिक कदम।
- ग्रामीण महिला एवं बालोत्थान कार्यक्रम (ड्वाकरा) के अन्तर्गत 43 जनपदों के 241 विकास खण्डों में रोजगारपरक प्रशिक्षण लेकर निजी व्यवसाय/उद्यम प्रारम्भ करने की व्यवस्था। वर्ष 1993–94 में महिलाओं द्वारा निर्मित वस्तुओं की 12.00 करोड़ रुपये की बिक्री तथा 1.65 करोड़ रुपये लाभ।
- महिलाओं की साक्षरता पर विशेष बल। जिन विकास खण्डों में जहाँ एक भी बालिका विद्यालय नहीं है वहाँ एक बालिका हायर सेकेन्ड्री स्कूल खोलने की व्यवस्था।
- महिला डेरी परियोजना के अन्तर्गत रोजगार दिलाने के लिए इटावा, बिजनौर, जालौन, फतेहपुर, रायबरेली, बाराबंकी, प्रतापगढ़ तथा वाराणसी में महिला डेरी की व्यापक परियोजनाएं। महिला डेरी समितियों को प्रोत्साहन।
- पर्वतीय क्षेत्र की महिला उद्यमियों की सुविधा के लिए चार बिक्री केन्द्रों की स्थापना का प्राविधान।
- निर्बल वर्ग की शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र की गर्भवती/धात्री महिलाओं के लिए पूरक पोषाहार तथा टीकाकरण आदि की निःशुल्क व्यवस्था।
- महिलाओं पर हो रहे अत्याचार व उत्पीड़न की शासन स्तर पर, महिला एवं बाल विकास विभाग तथा पुलिस/गृह विभाग के समन्वय से सतत् अनुश्रवण तथा त्वरित प्रभावी कार्यवाही हेतु निर्देश जारी किया जाना तथा जनपद स्तर पर जनपदीय अधिकारियों के लिए इस संबंध में मासिक रिपोर्ट भेजने की अनिवार्यता।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश

भाइयो व बहनो

लम्बे समय के बाद आप सबसे बात करने का मौका आया है। यूँ तो परम्परा रही है कि पदभार ग्रहण करने के तत्काल बाद ही जनता को संदेश दिया जाय परन्तु मैंने सोचा कि आपसे जो वायदे मैंने किये थे, उनको पूरा करके ही आपके सामने आऊँ। मुझे यह कहते संतोष हो रहा है कि प्रदेश के दलितों, पिछड़ों, मजदूरों तथा अन्य सभी वर्गों के लिए, सरकार से कुछ आकांक्षाओं की पूर्ति इतने अल्प समय में, आपके सहयोग से कर पाने में सफलता मिली है।

पिछले कुछ वर्षों तक साम्प्रदायिक उन्माद के माहौल में अपनी तमाम सामाजिक-आर्थिक पूँजी गँवा चुकने के बाद हमारी महान जनता ने पिछले चुनाव में एक ऐतिहासिक फैसला लिया था, और वह फैसला था साम्प्रदायिकता के मुकाबले विकास और सद्भाव को तरजीह देने का। आपके इसी निर्णय के चलते मुझे इस महान प्रदेश की सेवा का अवसर मिला। जनता ने जो फैसला लिया था उसके आज छः माह पूरे हो रहे हैं। इस बीच आपकी सरकार ने कई फैसले लिये हैं, जिनके बारे में आपको संक्षेप में बताना चाहूंगा।

हमने सबसे बड़ा फैसला यह लिया था कि चूँकि प्रदेश में पहली बार गरीबों की सरकार बनी है, इसलिए हमें पिछड़े, दलित, शोषित, अभावग्रस्त और परेशानहाल लोगों पर विशेष ध्यान देना है। हमने तय किया कि हम गरीबों को न्याय देंगे, सुरक्षा देंगे, सम्मानपूर्वक जीने का अवसर देंगे। लेकिन ऐसा करते हुए हम भेदभाव की नीति नहीं अपनायेंगे और बदले की भावना से काम नहीं करेंगे। विकास के मामले में हमारा नजरिया बिल्कुल साफ रहा है। हम मानते हैं कि गाँवों के विकास कार्यों को वह महत्व नहीं दिया गया जो कि दिया जाना चाहिए था। इस थोड़े से समय में हमने अपनी 'कथनी' को 'करनी' में बदलते हुए योजना राशि का 70 फीसदी हिस्सा गाँवों के विकास के लिए आवंटित किया है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पिछले विधानसभा सत्र के दौरान एक-दो नहीं, बल्कि 14 (चौदह) कानून

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
गरीबों के लिए, किसानों के लिए, दलितों व अल्पसंख्यकों के लिए बनाये गये हैं।

पिछड़े वर्गों को 27 प्रतिशत आरक्षण देने का अपना वायदा पूरा करने के साथ ही हमने अनुसूचित जाति का आरक्षण कोटा 18 प्रतिशत से बढ़ाकर 21 प्रतिशत कर दिया है। यह आरक्षण सी०पी०एम०टी०, इन्जीनियरिंग तथा बहुधन्धी संस्थाओं में भी कर दिया गया है। महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत जगहें ग्राम पंचायत, ब्लाक पंचायत तथा जिला परिषदों के लिए आरक्षित कर दी गयी हैं। प्रजापति समुदाय को मिट्टी के लिए पट्टे देने तथा मछलीपालन के लिए पट्टे केवल मछुआ समुदाय को देने का काम तेजी से किया जा रहा है। ताकि अपने पैतृक व्यवसाय के द्वारा वे खुशहाल हो सकें।

किसानों को उत्पादन में सहयोग देने के साथ ही उनकी उपज का लाभकारी मूल्य दिलाने के लिए गेहूं, धान या मोटा अनाज बाहर भेजने पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया गया है। गन्ने के मूल्य में भारी वृद्धि करने के साथ ही भुगतान की व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त किया गया, जिसका परिणाम है कि 95 (पच्चानवे) फीसदी से ज्यादा का भुगतान हो चुका है। मंडी परिषद में अब उन्हीं लोगों को प्रतिनिधित्व मिलेगा जो वास्तव में किसान हैं। सहकारी समितियों का प्रजातान्त्रिक स्वरूप सरकार ने बहाल किया है और ऐसी व्यवस्था कर दी है कि किसी समिति में सरकार की हिस्सा-पूंजी चाहे जितनी हो सरकार दो से ज्यादा प्रतिनिधि नामित नहीं कर सकेगी। ग्राम पंचायतों के प्रति हमारे मन में गहरी आस्था है। इसीलिए हमने पुरानी व्यवस्था बदल दी है और अब परगना अधिकारी हमारे निर्वाचित ग्राम प्रधानों को निलम्बित नहीं कर सकेंगे। विकास कार्यों में भागीदारी के लिए बहुत सारे अधिकार पंचायतों को दिये जा रहे हैं, जिसके लिये नया पंचायत अधिनियम पास हो चुका है।

हम समाजवादी व्यवस्था के हामी हैं और हम समाज में समता के साथ सम्पन्नता भी चाहते हैं। इसलिए औद्योगिक विकास का नया वातावरण बनाने पर हमने जोर दिया है। उद्यमियों को निरीक्षण के नाम पर बहुत तंग किया जाता था और उनका मनोबल गिरता जाता था। इसलिए सरकार ने 'इन्सपेक्टर राज' खतम करने के लिए कई कदम उठाये हैं। बिक्रीकर के पुराने पेचीदे ढांचे को समाप्त करके हमने 'व्यापार कर' की जो नयी व्यवस्था लागू की है वह व्यापारियों के अलावा उद्यमियों के भी व्यापक हित में है। 95 (पच्चानवे) फीसदी व्यापारियों ने इसका स्वागत किया है।

छात्र-छात्राओं तथा सम्मानित गुरुजनों के साथ आपराधियों की भांति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व्यवहार करने वाला 'नकल अध्यादेश' समाप्त करने के बाद भी नकल रहित परीक्षाएं कराने में हमें सफलता मिली है। हमारा इरादा शिक्षा व्यवस्था में ऐसा सुधार लाने का है जहाँ नकल करने का प्रश्न ही न रहे। हमारी भाषा नीति साफ है। हम चाहते हैं कि सारा सरकारी काम-काज देशी भाषा में हो। हिन्दी के साथ हमने उर्दू को भी रोजी-रोटी से जोड़ने और इसकी शिक्षा देने के कदम उठाये हैं, इसलिए कि प्रदेश के करोड़ों लोग उर्दू बोलते हैं। प्रसंगवश यह भी बता दूं कि संस्कृत को त्रिभाषा फार्मूले से निकाला नहीं गया है जैसा कि कुछ लोग मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। साहित्य, कला और संस्कृति के विकास पर भी हमारा पूरा ध्यान है।

'उत्तराखण्ड' को अलग राज्य का दर्जा देने की दिशा में तेजी से काम हुआ है। सिंचाई व्यवस्था, पेयजल, शिक्षा व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधा, अम्बेडकर गाँवों की स्थापना, शान्ति सुरक्षा बल के गठन के बारे में भी तेजी से कार्य हो रहा है।

भाइयों व बहनों, मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि हमारे जो मुख्य वायदे थे वे छः महीने में ही हमने पूरे कर लिए हैं। लेकिन समता लाने, सामाजिक परिवर्तन लाने और समाज के आखिरी आदमी के मुख पर मुस्कान लाने का संकल्प पूरा करने में समय लगेगा। हम जो कुछ कर सके हैं उसका श्रेय हमें नहीं बल्कि उस महान जनता को दिया जाना चाहिए जिसने हमें यह अवसर दिया, जिसने साम्प्रदायिकता के मुकाबले विकास को तरजीह दी। आज भी कुछ साम्प्रदायिक शक्तियां भाई चारे के माहौल को बिगाड़ कर सामाजिक एकता को तोड़ने की साजिश कर रही हैं। हमें ऐसे तत्वों से सावधान रहकर उनकी साजिश को सफल नहीं होने देना है ताकि विकास और खुशहाली का वातावरण बिगड़ने न पाये।

हम अपने राजनीतिक सहयोगी दलों के आभारी हैं जो हमें अपना उदार समर्थन दे रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन के लम्बे रास्ते में एक पड़ाव पर हम आज पहुँचे हैं। आपके सहयोग और विश्वास से हम समता पर आधारित समृद्ध उत्तर प्रदेश की रचना में आगे बढ़ेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

जय हिंद।

आपका

(मुलायम सिंह यादव)

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हम गाँव का चेहरा बदलकर गाँव और शहर की दूरियों को हर क्षेत्र में पाटने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं

- योजना राशि का 70 प्रतिशत ग्रामीण विकास पर व्यय करने का ऐतिहासिक निर्णय।
- दो वर्ष के अन्दर सभी गावों को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने की कारगर रणनीति।
- स्वच्छता कार्यक्रम को बढ़ावा और ग्रामीण शौचालयों के निर्माण के लिए 22 करोड़ रुपये का प्राविधान।
- गरीबी रेखा के नीचे वाले परिवारों को 1993–94 में पिछले वर्ष के मुकाबले 60 प्रतिशत अधिक ऋण और 45 प्रतिशत अधिक अनुदान।
- एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम द्वारा 1994–95 में 4.50 लाख परिवारों को लाभ पहुँचाने की व्यवस्था। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए 27 प्रतिशत अधिक राशि।
- अगले पांच वर्षों में 10,000 अम्बेडकर ग्राम विकसित करने का कार्य प्रारम्भ।
- जवाहर रोजगार योजना में वर्ष 1993–94 में पिछले वर्ष के मुकाबले 40 प्रतिशत अधिक रोजगार सृजन। चालू वर्ष के लिए 605 करोड़ रुपये का प्राविधान। बारह पिछड़े जिलों में विशेष जवाहर रोजगार योजना।
- विशेष रोजगार योजना द्वारा उत्पादक और लाभकारी रोजगार दिलाने के लिए 100 करोड़ रुपये का विशेष प्राविधान।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का
कर
हर
को
टने
लिए
द हैं
करने का
ाने की
के लिए
ले वर्ष के
दान।
50 लाख
र्यक्रमों
का कार्य
मुकाबले
रोड़ रुपये
योजना।
र दिलाने
ारित

अपना विकास और न्याय अब ग्राम सभा स्तर तक लागू होगा

- पंचायतों को और अधिक क्रियाशील तथा अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए पंचायत विधि (संशोधन) अधिनियम–1994 लागू।
- पंचायतों को अपने क्षेत्र के विकास से संबंधित योजनाएं स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त।
- अब परगना अधिकारी को निर्वाचित ग्राम प्रधान को निलम्बित करने का अधिकार नहीं। लोकतंत्र की बुनियादी इकाई का सम्मान बहाल।
- जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का दर्जा अफसरशाही से ऊपर रखने का नीतिगत निर्णय। ग्राम्य विकास अभिकरण की अध्यक्षता का अधिकार अब जिलाधिकारी के बजाय जिला परिषद के अध्यक्ष को।
- पंचायतों में अब 30 प्रतिशत जगहें महिलाओं के लिए। पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति के लोगों को भी आरक्षण।
- पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए वित्त आयोग तथा निर्वाचन व्यवस्था संभालने के लिए चुनाव आयोग का गठन।
- नयी पंचायती व्यवस्था में अनुमेलन/नामित सदस्यों की व्यवस्था समाप्त।
- वर्ष 1994–95 में पंचायत भवनों के निर्माण के लिए 2 61 करोड़ रुपये का प्राविधान।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

युग साक्षी-30 पंजीयन संख्या 46219/86

हमारे तीन विशिष्ट प्रकाशन

दूसरे देश काल में (कहानी संग्रह)

राजी सेठ मूल्य : 50/-

तपती रेखाएँ (उपन्यास)

डा० देवराज मूल्य : 75/-

दर्शन : स्वरूप-समस्याएं-जीवन दृष्टि

डा० देवराज मूल्य : 90/-

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

2/35 अन्सारी रोड, दरियागज नई दिल्ली-110 002

युगसाक्षी कार्यालय : 52, बादशाह नगर, लखनऊ-7 से डॉ० देवराज द्वारा प्रकाशित तथा उन्ही के द्वारा नेशनल आर्ट प्रेस, लखनऊ-7 से मुद्रित। सम्पादक मण्डल पूर्णतः अवैतनिक है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow